अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 9 भाद्रपद-आश्विन वि.सं. 2083 सितम्बर, 2026 मूल्य : अठारह रुपये पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

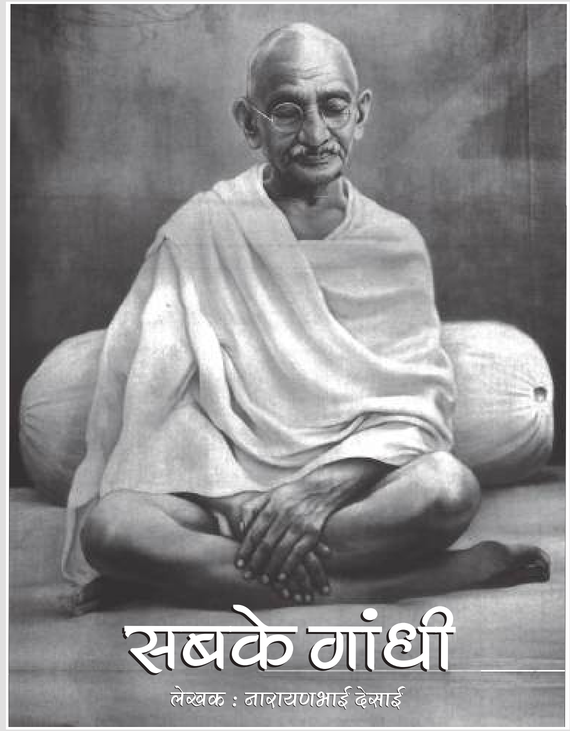

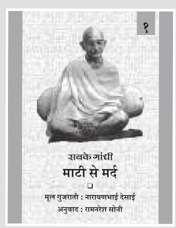

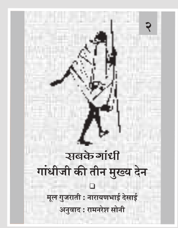

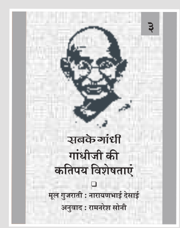

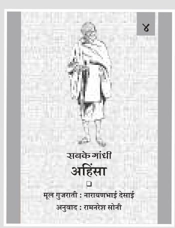

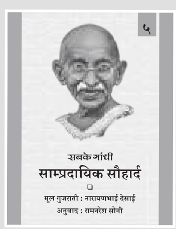

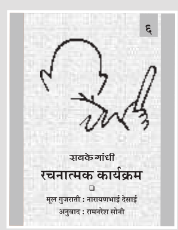

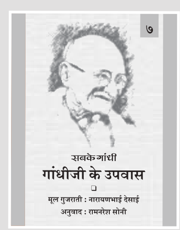

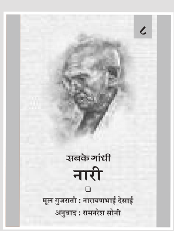

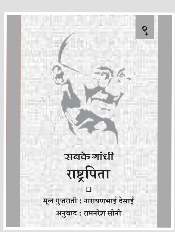

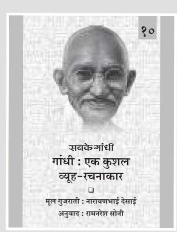

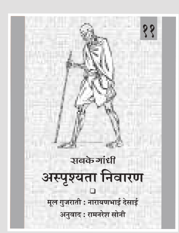

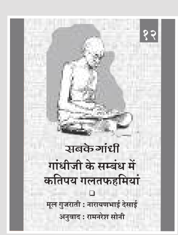

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च रुपये 75/– अलग से देय होगा।

वाणी

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिम न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र,चंदन न वने वने।।

– सुभाषित

प्रत्येक हाथी के मस्तक में मोती नहीं होता। सज्जन लोग सब जगह नहीं होते और प्रत्येक वन में चंदन नही पाया जाता।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 9 भाद्रपद-आश्विन वि.सं. 2083 सितम्बर, 2026 मूल्य : अठारह रुपये

क्र म

वाणी

3. सुभाषित

संपादकीय

5. भविष्य का अध्ययन

अभिमत

7. शिक्षा व्यवस्था में सुधार की नहीं आमूल-चूल बदलाव की जरूरत! **– जॉन वर्गीस**

10. परीक्षा में मूल्यांकन की विश्वसनीयता **– डॉ. पी.एन.कल्ला**

विमर्श

12. पास होने के लिये 33 प्रतिशत अंक ही काफी क्यों ! **– रोशनी चक्रवर्ती**

14. प्रकृति बचाना सीखने सिखाने का वनस्पति उत्सव **– देवेन्द्र भारद्वाज**

विमर्श

16. आर्ट-थैरेपी : आदिम चेतना से आधुनिक युवा मन तक **– अन्नपूर्णा शुक्ला**

अभिमत

19. बाल शिक्षण में नुक्कड़ नाटक **– संग्राम सिंह सोढा**

विमर्श

21. प्रज्ञालोक का सिंहद्वार होता है इतिहास ! **– डॉ. कन्हैयालाल खाँड़पकर**

23. गलत सवाल से सही जगह पहुंचने की शिक्षा **– संजय शर्मा**

समाचार

25. गांधी के हस्तलिखित संदेशों का संग्रह 16.20 करोड़ में बिका **– डॉ. लता व्यास**

26. समाचार

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,

जयपुर-302004

फोन : 2700559, 2706709, 2707677

ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा

प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

भविष्य का अध्ययन

हम अपनी सारी मेधा, ऊर्जा और श्रम इतिहास को समझने में लगाते हैं लेकिन भविष्य को समझने में कोई रुचि नहीं दिखाते। अब समय बदल चुका है। इक्कीसवीं सदी का एक चौथाई हिस्सा (25 वर्ष) बीत चुका है। इन 25 वर्षों में दुनिया ने तकनीकी, सामाजिक और पर्यावरणीय स्तर पर जितने तीव्र बदलाव देखे हैं, उतने मानव इतिहास की पिछली कई सदियों में नहीं देखे गए। आज हम एक ऐसे दोराहे पर खड़े हैं जहां अतीत के अनुभव आने वाले कल की समस्याओं को सुलझाने के लिए नाकाफी साबित हो रहे हैं। इसलिए, अब समय आ गया है कि हम 'इतिहास के अध्ययन' की तरह ही 'भविष्य के अध्ययन' को एक अनिवार्य विषय के रूप में अपनाएं ताकि आने वाली अभूतपूर्व चुनौतियों से समय रहते निपट सकें।

अतीत को जानना इसलिए जरूरी है क्योंकि वह हमें हमारी जड़ों और गलतियों से परिचित कराता है। लेकिन केवल इतिहास के पन्नों में डूबे रहने से हम आगे का रास्ता नहीं देख सकते। इसे एक साधारण उदाहरण से समझा जा सकता है: यदि कोई चालक गाड़ी चलाते समय अपना पूरा ध्यान केवल पीछे देखने वाले शीशे पर रखेगा, तो दुर्घटना होना तय है। आगे बढ़ने के लिए सामने के बड़े शीशे से देखना अनिवार्य है।

अब तक हमारी शिक्षा प्रणाली और नीतियां अतीत की ओर अधिक झुकी हुई रही हैं। हम प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के कारणों पर हज़ारों किताबें पढ़ते हैं, लेकिन अगले डिजिटल या जैविक युद्ध को कैसे रोका जाए, इस पर हमारा ध्यान बहुत कम है। इतिहास हमें बताता है कि महामारियां कैसे आईं, लेकिन भविष्य का अध्ययन हमें यह सिखाएगा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता और जेनेटिक इंजीनियरिंग के इस दौर में अगली वैश्विक महामारी का स्वरूप कैसा हो सकता है।

इक्कीसवीं सदी के शुरुआती 25 वर्षों ने हमें चेतावनी दे दी है कि आने वाला समय कितना अप्रत्याशित होने वाला है। सन 2000 में इंटरनेट अपनी शुरुआती अवस्था में था, स्मार्टफोन जैसी कोई चीज नहीं थी और सोशल मीडिया का नामोनिशान नहीं था। आज, मात्र ढाई दशकों में, एल्गोरिदम तय कर रहे हैं कि हम क्या सोचेंगे, क्या खरीदेंगे और किसे वोट देंगे। इन 25 वर्षों में हमने जलवायु परिवर्तन के विनाशकारी असर, वैश्विक आर्थिक मंदी, कोविड-19 जैसी महामारी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विस्फोट देखा है। बदलाव की यह गति सीधी रेखा वाली नहीं बल्कि फैलाव वाली है। यह मानने में किसी को गुरेज नहीं है कि अगले 25 वर्ष (2026 से 2050) पिछले 25 वर्षों की तुलना में दस गुना अधिक तेजी से बदलेंगे। यदि हम आज भी केवल अतीत के ढर्रे पर चलते रहे, तो हम आने वाले बदलावों के शॉक को बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे। भविष्य की प्रमुख चुनौतियों के अध्ययन की प्रासंगिकता इसीलिए है कि यह अध्ययन हमें उन संकटों के प्रति सचेत करता है जो अभी पूरी तरह से सामने नहीं आए हैं,

लेकिन जिनकी नींव रखी जा चुकी है, जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रोजगार का संकट। आने वाले समय में एआई और ऑटोमेशन केवल शारीरिक श्रम वाले रोजगारों को ही खत्म नहीं करेंगे, बल्कि वकालत, कोडिंग, पत्रकारिता और चिकित्सा जैसे बौद्धिक क्षेत्रों को भी प्रभावित करेंगे। यदि हम भविष्य का अध्ययन नहीं करेंगे, तो हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसे युवा ही तैयार करती रहेगी जो केवल उन नौकरियों के लिए योग्य होंगे जो भविष्य में अस्तित्व में नहीं रहने वाली हैं।

भारत में आज युवाओं की बड़ी आबादी है जिसमें अब बदलाव के संकेत मिलने लगे हैं। भविष्य का अध्ययन सरकारों को यह समझने में मदद करेगा कि बुजुर्ग होती आबादी के लिए स्वास्थ्य प्रणालियां कैसी होनी चाहिए और युवाओं की ऊर्जा को सही दिशा कैसे दी जाए। आज सरकारों और कॉरपोरेट्स के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे 'संकट प्रबंधन' तो करते हैं, लेकिन 'संकट निवारण' नहीं कर पाते। जब कोई आपदा आती है, तब हम जागते हैं। भविष्य का अध्ययन नीति निर्माताओं को रणनीतिक दूरदर्शिता प्रदान करेगा। पर्यावरणविद् तथा समाजशास्त्री वैश्विक स्तर पर विभिन्न परिदृश्यों की कल्पना करते हैं। सर्वोत्तम परिदृश्य है कि हम आज से ही कार्बन उत्सर्जन शून्य कर दें और एआई को विनियमित कर दें। दूसरा परिदृश्य यथास्थिति का है। हम जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहें। तीसरा परिदृश्य बदतर हालत होने का है। जैसे एआई अनियंत्रित हो जाए, परमाणु हथियारों की होड़ दोबारा शुरू हो जाए। इन परिदृश्यों के आधार पर सरकारें ऐसी लचीली नीतियां बना सकती हैं जो किसी भी अप्रत्याशित परिस्थिति का सामना करने में सक्षम हों। सिंगापुर और फिनलैंड जैसे देशों ने अपनी सरकारों में विशेष 'फ्यूचर्स डिपार्टमेंट' या थिंक-टैंक बनाए हैं, जो आने वाले 30 वर्षों की योजनाएं तैयार करते हैं। भारत में नीति आयोग यह काम करता है।

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में 'इतिहास' के साथ 'भविष्य' का समावेश जरूरी है क्योंकि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह से अतीत पर केंद्रित है। विद्यार्थियों को यह तो रटाया जाता है कि पानीपत का युद्ध कब हुआ था, लेकिन उन्हें यह सोचना नहीं सिखाया जाता कि यदि 2040 में पीने के पानी की कमी हो गई, तो समाज उसे कैसे पार पाएगा। हमें स्कूलों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में 'फ्यूचर्स लिटरेसी' (भविष्य की साक्षरता) को शामिल करना होगा। इसके तहत छात्रों को प्रणालियों की सोच की तरफ ले जाना होगा ताकि वे समझ सकें कि कैसे पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और तकनीक एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

तेजी से बदलती दुनिया में खुद को ढालने और लगातार नया सीखने की क्षमता छात्रों में तैयार करनी होगी ताकि उनमें दीर्घकालिक दृष्टि बन सके। इक्कीसवीं सदी का यह 26 वां साल आने वाले कल को आकार देने का समझ विकसित करने की शुरुआत का साल कैसे बने इस पर सोचने का यही समय है। इतिहास को बदला नहीं जा सकता, उससे केवल सीखा जा सकता है। लेकिन भविष्य को अभी भी बदला और संवारा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी का यह मोड़ हमसे मांग करता है कि हम अपनी प्रतिक्रियावादी मानसिकता को छोड़कर सक्रिय दृष्टिकोण अपनाएं। यदि हम भविष्य का अध्ययन नहीं करेंगे, तो भविष्य हमारे ऊपर एक अनियंत्रित संकट की तरह टूट पड़ेगा। लेकिन अगर हम आज से ही आने वाली चुनौतियों का व्यवस्थित अध्ययन, विश्लेषण और नियोजन शुरू कर दें, तो हम एक ऐसी दुनिया का निर्माण कर सकते हैं जो अधिक समतावादी, सुरक्षित और संधारणीय हो। ❑

शिक्षा व्यवस्था में सुधार की नहीं आमूल-चूल बदलाव की जरूरत!

जॉन वर्गीस

सेंट स्टीफंस कॉलेज के पूर्व प्रिंसिपल प्रतियोगी परीक्षाओं की समस्याओं की टोह लेते हुए शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने की इस आलेख में बात कर

शिक्षा व्यवस्था में सिर्फ़ सुधार की नहीं, बल्कि पूरी तरह से बदलाव की ज़रूरत है। नीतिगत बदलाव की ज़रूरत है। हमें अब बैठकर एक ऐसी व्यवस्था बनानी होगी जिसमें परीक्षाएं निष्पक्ष हों, पेशेवर तरीके से आयोजित हों और छात्र उन्हें खुशी-खुशी और अपनी मर्ज़ी से दें।

भारत की शिक्षा प्रणाली ने बेहतरीन प्रोफेशनल टैलेंट तैयार किया है, लेकिन इसके एडमिशन कल्चर ने एक खतरनाक भावनात्मक माहौल भी बना दिया है। इसमें अक्सर मार्क्स, रैंक और एक बार होने वाली कॉम्पिटिटिव परीक्षाओं को ही इंटेलिजेंस, काबिलियत और भविष्य की संभावनाओं का एकमात्र पैमाना मान लिया जाता है। इसे बदलना होगा। परीक्षाओं को ज़्यादा समावेशी बनाने की ज़रूरत है, ताकि वे उच्च शिक्षा के चुने हुए क्षेत्र के लिए अभ्यार्थी की काबिलियत को परखने के साथ-साथ छात्रों के मूल्य और क्षमताओं को भी दिखा सकें। हमें एक ऐसी प्रणाली विकसित करनी होगी जो निष्पक्ष, मज़बूत और सम्मानजनक हो।

एडमिशन की एक निष्पक्ष प्रणाली में योग्यता के बहु-आयामी आकलन को अपनाना होगा। एडमिशन प्रक्रिया में स्कूल के परफॉर्मेंस (मॉडरेटेड), विषय-विशेष की योग्यता, विश्लेषणात्मक लेखन, जहां ज़रूरी हो वहां संरचित इंटरव्यू, प्रैक्टिकल या स्थिति-आधारित कार्य, और सत्यापित किए जा सकने वाले पोर्टफोलियो, प्रोजेक्ट, इंटर्नशिप, सामुदायिक कार्य और सह-पाठ्यचर्या संबंधी उपलब्धियों को शामिल किया जाना चाहिए। इस तरह के दृष्टिकोण से न केवल याददाश्त और गति की जांच होगी, बल्कि तर्कशक्ति, दृढ़ता, संचार कौशल, निर्णय लेने की क्षमता, नैतिक दृष्टिकोण और चुने हुए क्षेत्र के लिए उपयुक्तता की भी परख होगी।

एंट्री-लेवल संस्थानों को खुद, सक्षम स्कूल शिक्षकों की भागीदारी के साथ, पारदर्शी मानदंडों और उचित सुरक्षा उपायों के साथ इन आकलनों को डिज़ाइन और संचालित करना चाहिए। परीक्षाओं को इस तरह से फिर से डिज़ाइन किया जाना चाहिए कि वे कोचिंग उद्योग को बढ़ावा देने वाले अनुमानित पैटर्न के बजाय ज्ञान के अनुप्रयोग, व्याख्या और उच्च-स्तरीय सोच का आकलन करें। इससे मानकों को बनाए रखते हुए प्रवेश प्रक्रिया को वास्तविक क्षमता, शैक्षिक उद्देश्य और छात्र की संभावनाओं के साथ बेहतर ढंग से जोड़ा जा सकेगा।

उद्योग जगत, अभिभावकों और छात्रों को मिलकर शैक्षिक

सफलता के अर्थ को कुछ गिने-चुने हाई-प्रेशर वाले प्रोफेशनल कोर्स से आगे बढ़ाना होगा। करियर मेलों, इंटर्नशिप, मेंटरशिप कार्यक्रमों, कार्यस्थल के दौरों और पूर्व छात्रों के साथ जुड़ाव के माध्यम से उद्योग जगत के साथ नियमित बातचीत छात्रों को स्कूल स्तर पर ही नए क्षेत्रों में उभरते अवसरों के बारे में जागरूक कर सकती है और पारंपरिक करियर रास्तों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं पर अंधी निर्भरता को कम कर सकती है।

अभिभावकों, विशेषकर उन लोगों को जिनके पास विश्वसनीय जानकारी तक सीमित पहुंच है और जो अक्सर महंगे लोन का सहारा लेते हैं, उन्हें कोर्स, करियर, लागत, स्कॉलरशिप, योग्यता, मानसिक स्वास्थ्य जोखिमों और बच्चे की रुचियों व अभिभावकों की महत्वाकांक्षाओं के बीच अंतर के बारे में स्थानीय भाषाओं में संरचित परामर्श की आवश्यकता है। छात्रों को प्रतिष्ठा-आधारित विकल्पों के बजाय मार्गदर्शन और योग्यता-आधारित बातचीत के माध्यम से अपनी क्षमताओं, स्वभाव और आकांक्षाओं का यथार्थवादी ढंग से आकलन करने में मदद की जानी चाहिए। जब उद्योग जगत का सही अनुभव, अभिभावकों का जिम्मेदार सहयोग और छात्रों का आत्म-जागरूक निर्णय लेना एक साथ आते हैं, तो शैक्षिक विकल्प अधिक तर्कसंगत, मानवीय और कम भय-प्रेरित हो जाते हैं। यही वह आधार है जिस पर एक निष्पक्ष और प्रभावी एंट्री-लेवल मूल्यांकन प्रणाली बनाई जा सकती है।

संविधान शिक्षा को एक सार्वजनिक भलाई मानता है, न कि कोई व्यावसायिक दौड़। यह राज्य की स्पष्ट ज़िम्मेदारी तय करता है कि वह समानता, सम्मान और शिक्षा के अधिकार की रक्षा करे, खासकर बच्चों और कमज़ोर वर्गों के लिए। जब कोचिंग का माहौल शोषणकारी हो जाता है - जिससे असमानता बढ़ती है, औपचारिक स्कूली शिक्षा पर असर पड़ता है और छात्रों की भलाई को नुकसान पहुँचता है - तो संसद और राज्य विधानसभाओं को कानून, नियम और निगरानी के ज़रिए कदम उठाने चाहिए। हो सकता है कि संसद और विधानसभा के सदस्य किसी लगातार बनी हुई सामाजिक समस्या के लिए व्यक्तिगत रूप से ज़िम्मेदार न हों, लेकिन फीस, विज्ञापन, मानसिक स्वास्थ्य सहायता, हॉस्टल के मानकों और धोखाधड़ी वाले तौर-तरीकों को लेकर सुरक्षा उपाय बनाने और उन्हें लागू करने के लिए वे संस्थागत रूप से ज़िम्मेदार होते हैं। छात्रों की आत्महत्या और शिक्षा के व्यावसायीकरण के सबूतों के बावजूद, लगातार कोई कदम न उठाना लोकतांत्रिक और कानूनी जाँच को न्योता देता है, जिससे तुरंत कार्रवाई करना एक संवैधानिक ज़िम्मेदारी बन जाती है।

क्या एक ही तरीका सबके लिए सही हो सकता है? नहीं। नेशनल टेस्टिंग एजेंसी जैसी केंद्रीयकृत एजेंसी इस सोच पर काम करती है कि एक ही तरह का एग्ज़ाम मॉडल अलग-अलग विषयों, इलाकों और सामाजिक बैकग्राउंड वाले सभी स्टूडेंट्स को सही ढंग से परख सकता है। यह सोच गलत है - खासकर भारत जैसे देश में, जो हर तरह से विविधतापूर्ण है। संस्थान और प्रोफेशनल बॉडीज़ यह तय करने के लिए बेहतर स्थिति में होती हैं कि उन्हें कैंडिडेट्स में क्या चाहिए, क्योंकि वे करियर बनाने वाले खास कोर्स के लिए ज़रूरी बौद्धिक और एकेडमिक ज़रूरतों, स्किल्स, एप्टीट्यूड और नैतिक सोच को समझती हैं। एक ही नेशनल टेस्ट से लॉजिस्टिकल बोझ और डेमोग्राफिक असमानता भी पैदा होती है। भाषा, भूगोल, स्कूल बैकग्राउंड, डिजिटल एक्सेस और स्थानीय शैक्षिक कमियां, ये सभी परफॉर्मेंस पर असर डालते हैं, जिससे एक ही टेस्ट सबके लिए वाला मॉडल न तो शिक्षा के लिहाज़ से सही है और न ही सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण। एक विकेंद्रीकृत सिस्टम, जिसमें विश्वविद्यालयों या संस्थानों के ग्रुप यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन के नियमों के दायरे में रहकर अपने असेसमेंट खुद डिज़ाइन और कंडक्ट करें, ज़्यादा सही और संतुलित मूल्यांकन की गुंजाइश देगा। असेसमेंट के सही तरीकों की पहचान करने के लिए स्टूडेंट्स से भी एक व्यवस्थित तरीके से सलाह ली जा सकती है, हालांकि लाइव क्वेश्चन पेपर या गोपनीय कंटेंट तक पहुंच से सख्ती से बचना चाहिए। पवित्रता बनाए रखने और पेपर लीक रोकने के लिए ये सुरक्षा उपाय ज़रूरी हैं। एन्क्रिप्टेड डिजिटल पेपर ट्रांसमिशन; एल्गोरिदम-आधारित रैंडमाइज़ेशन के साथ मल्टी-लेयर्ड क्वेश्चन बैंक; पेपर सेट करने वालों की कड़ी जांच और रोटेशन; सुरक्षित प्रिंटिंग और सीलबंद डिस्ट्रीब्यूशन प्रोटोकॉल; एग्ज़ाम सेंटर्स का स्वतंत्र ऑडिट और निगरानी। और किसी भी तरह की गड़बड़ी के लिए कड़ी सज़ा का प्रावधान। अतिरिक्त सुरक्षा उपायों में बायोमेट्रिक कैंडिडेट वेरिफिकेशन,

अलग-अलग समय पर पेपर और एग्ज़ाम के बाद गड़बड़ियों की फोरेंसिक समीक्षा शामिल हो सकती है।

एकेडमिक कैलेंडर में सही ढंग से शेड्यूल किए गए विकेंद्रीकृत परीक्षा से तनाव कम होगा, एक ही विफलता से होने वाली देशव्यापी रुकावट से बचा जा सकेगा, और संस्थान सिर्फ़ कोचिंग-आधारित एग्ज़ाम तकनीक के बजाय असली काबिलियत और तैयारी को परख सकेंगे।

प्रवेश परीक्षा से से छात्रों को चुने हुए क्षेत्र में अपनी क्षमताओं और काबिलियत को परखने में मदद मिलनी चाहिए। छात्रों को अपनी मर्ज़ी से परीक्षा देनी चाहिए, यह समझते हुए कि दुनिया वाकई प्रतिस्पर्धी है, और जिस खास परीक्षा में वे बैठ रहे हैं, उससे कहीं ज़्यादा उनकी अपनी अहमियत है। जब करियर के दूसरे विकल्प मौजूद होते हैं, तो छात्रों पर दबाव बहुत कम होता है; और अगर वे किसी प्रोफेशन को लेकर जुनूनी हैं, तो वे उसके लिए कड़ी मेहनत करना सीखेंगे।

भारत में सुधार की दिशा ऐसी होनी चाहिए जो रैंक-आधारित चयन से हटकर क्षमता-आधारित पहचान की ओर बढ़े। एक निष्पक्ष प्रवेश प्रणाली में सिर्फ़ यह नहीं देखा जाना चाहिए कि परीक्षा के दबाव में किसने सबसे ज़्यादा अंक हासिल किए, बल्कि यह भी देखा जाना चाहिए कि किसमें अपने चुने हुए क्षेत्र में आगे बढ़ने की योग्यता, प्रेरणा, नैतिक गंभीरता, मुश्किलों से उबरने की क्षमता और आगे बढ़ने की काबिलियत है। ऐसा सिस्टम उत्कृष्टता को महत्व तो देगा, लेकिन उत्कृष्टता को ज़्यादा समझदारी और मानवीय तरीके से परिभाषित करेगा।

पिछले कुछ दिनों में, 'जेन ज़ेड' ने हमें एक ऐसे कड़वे सच से रूबरू कराया है जिसे हम लंबे समय से नज़रअंदाज़ करते आ रहे हैं: कुछ खास पेशों पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देना। इस पीढ़ी के पास विकल्प हैं, और हमें उन्हें ज़िम्मेदारी से चुनने का मौका देना चाहिए, साथ ही उन्हें इसके नतीजों को समझने में भी मदद करनी चाहिए। शिक्षा का संवैधानिक वादा ऐसे सिस्टम से पूरा नहीं हो सकता जो डर, कर्ज़ और मानसिक तनाव को बढ़ावा दे और उसके नतीजों को 'मेरिट' या योग्यता का नाम दे। इसका विकल्प सर्वांगीण मूल्यांकन, कोचिंग के व्यावसायीकरण पर नियंत्रण, संस्थागत मानसिक स्वास्थ्य सहायता, इंडस्ट्री की भागीदारी और माता-पिता व छात्रों के लिए लगातार काउंसलिंग में है, जिसमें शैक्षिक विकल्पों के केंद्र में उनकी रुचियों, क्षमताओं और सम्मान को रखा जाए। इससे ज़्यादा खुश और आत्मविश्वासी युवा तैयार होंगे जो मजबूरी में नहीं, बल्कि सोच-समझकर अपना करियर चुनेंगे, जिससे एक बेहतर भारत और बेहतर दुनिया का रास्ता बनेगा। अगर ये बदलाव अभी शुरू हो जाएं, तो एंट्रेंस परीक्षा के तनाव के कारण होने वाली आत्महत्याओं को रोका जा सकता है।❑

जीवन में प्राइमरी टीचर की भूमिका

प्राइमरी टीचर का बच्चे के जीवन में सर्वाधिक महत्व होता है। एक शिक्षक का स्पर्श और उसके प्यार भरे बोल उन्हें कहां का कहां ले जा सकते हैं। बचपन में बच्चे को जो प्यार, जो समझाइश, जो स्नेह मिलता है वह जीवन भर काम करता है। उसके भीतर खून की तरह बहता है। टीचर का बच्चे के जीवन में अविस्मरणीय योगदान होता है ।

हम अनुमान लगा सकते हैं कि बच्चे के जीवन में घर और स्कूल, शिक्षक और माता -पिता कितने अहम होते हैं। उनके दिए संस्कार बच्चे के जीवन में नींव का काम करते हैं। नींव मजबूत है तो इमारत भी मजबूत होगी।

संस्कारों की शुरुआत यहीं से होती है । इस समय जो व्यवहार हम बच्चे के साथ करते हैं ,जो बीज उसके मस्तिष्क की जमीन में रोप रहे हैं वही तो आगे चलकर पुष्पित, पल्लवित होगा। ये संस्कार शिक्षक देते हैं, माता -पिता देते हैं, घर देता है, स्कूल देता है और यह काम चुपचाप होता रहता है।

बचपन कच्ची मिट्टी की तरह होता है टीचर और माता -पिता ही उसे सही आकार, रंग-रूप देते हैं। इस समय बहुत सावधानी की जरूरत होती है। वरना तो हम हर रोज देख ही रहे हैं पुलों को टूटते हुए ।

जीवन के प्रारम्भिक वर्ष बच्चे के जीवन में जितने महत्वपूर्ण होते हैं उतना ही महत्वपूर्ण उसके जीवन में प्राइमरी टीचर होता जो उसके व्यक्तित्व को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । एक योग्य टीचर बच्चे को फर्श से अर्श तक पहुंचा सकने में सक्षम होता है ।❑

डॉ. पद्मजा शर्मा

परीक्षा के मूल्यांकन की विश्वसनीयता

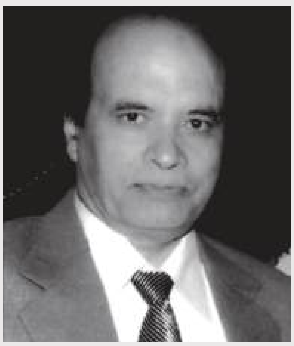

❑
डॉ. पी. एन. कल्ला

विश्वविद्यालयों के उच्च शिक्षा प्रशासन में लंबी भागीदारी निभाने वाले शिक्षक इस आलेख में परीक्षाओं के मूल्यांकन की विश्वसनीयता को रेखांकित कर रहे हैं। सं.

❑

सरकार ने हाल ही में हुए पेपर लीक विवाद पर सार्वजनिक परीक्षाओं की निष्पक्षता और ईमानदारी में लोगों का भरोसा फिर से कायम करने के लिये 'सार्वजनिक परीक्षा (अनुचित साधनों की रोकथाम) अधिनियम, 2024' में संशोधन संसद से पारित करा कर संगठित नकल और पेपर लीक के ख़िलाफ़ सख़्त सज़ा और व्यापक प्रावधानों के ज़रिए कानूनी ढांचे को मज़बूत किया है। ऐसे देश में जहां एक ही परीक्षा उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों तक पहुंच तय कर सकती है, वहां मूल्यांकन प्रक्रिया की विश्वसनीयता बहुत मायने रखती है।

पिछले एक दशक में, भारत के एजुकेशन रिफॉर्म्स कॉमन एंट्रेंस एग्जाम, नेशनल फ्रेमवर्क और मज़बूत रेगुलेटरी ओवरसाइट के ज़रिए ज़्यादा स्टैंडर्डाइज़ेशन की ओर बढ़े हैं, जिसका मकसद ट्रांसपेरेंसी और अकाउंटेबिलिटी में सुधार करना है। हालाँकि, एक कॉमन एग्जाम अपने आप एक लेवल प्लेइंग फील्ड नहीं बनाता है। छात्र एक ही एग्जाम में बैठ सकते हैं, लेकिन वे एक जैसी स्कूलिंग, भाषा की प्रोफिशिएंसी, कोचिंग तक एक्सेस या सोशियो-इकोनॉमिक रिसोर्स के साथ एग्जामिनेशन हॉल में नहीं जाते हैं।

राष्ट्रीय मानक महत्वपूर्ण हैं, लेकिन मानकीकरण का मतलब अत्यधिक केंद्रीकरण नहीं होना चाहिए। केंद्र विश्वसनीयता, न्यूनतम मानक और सामान्य सुरक्षा उपाय तय कर सकता है, जबकि राज्यों, बोर्डों और संस्थानों के पास स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार काम करने के लिए पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए। निष्पक्षता का मतलब हर सीखने वाले के साथ एक जैसा व्यवहार करना नहीं है। इसका मतलब यह सुनिश्चित करना है कि सीखने वाले की पृष्ठभूमि अवसरों के लिए कोई ऐसी बाधा न बने जिसे टाला जा सकता था। संविधान के तहत शिक्षा एक समवर्ती सूची का विषय है, जिसमें नीति-निर्माण और उसे लागू करने की जिम्मेदारी केंद्र और राज्यों दोनों की होती है। हालांकि राष्ट्रीय मानक एकरूपता लाने में मदद कर सकते हैं, लेकिन विशेषज्ञों का तर्क है कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार काम करने के लिए राज्यों और संस्थानों को लचीलेपन की आवश्यकता होती है।

इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्या छात्रों को एजुकेशन सिस्टम को समझने और आगे बढ़ने के लिए ज़रूरी मदद मिल रही है। कॉमन, नेशनल-लेवल के असेसमेंट

वाकई फायदेमंद होते हैं; ये अलग-अलग बैकग्राउंड वाले छात्रों को एक जैसा और पारदर्शी पैमाना देते हैं। लेकिन सबसे ज़रूरी बात यह नहीं है कि असेसमेंट सेंट्रलाइज़्ड हो या लोकलाइज़्ड, बल्कि यह है कि हर छात्र को - चाहे वह कहीं भी पढ़ता हो - तैयारी के लिए ज़रूरी गाइडेंस और काउंसलिंग समान रूप से मिल सके। एक सर्वे के अनुसार, 40 प्रतिशत छात्रों ने कभी किसी करियर काउंसलर से बात नहीं की थी और एक-चौथाई छात्रों को काउंसलिंग सर्विस नहीं मिल रही थी। गाइडेंस और तैयारी के मौकों में असमानता से भेदभाव और बढ़ सकता है, क्योंकि कॉम्पिटिटिव एग्ज़ाम ही हायर एजुकेशन में जाने का मुख्य ज़रिया बन गए हैं।

दुनिया के सबसे भरोसेमंद असेसमेंट सिस्टम सिर्फ़ सुरक्षित परीक्षाओं पर ही नहीं टिके होते। वे मज़बूत असेसमेंट डिज़ाइन, पारदर्शी मानकों, एक जैसी स्कोरिंग और दशकों की रिसर्च पर आधारित होते हैं, जो यह पक्का करते हैं कि शिक्षा और वर्कफ़ोर्स की बदलती उम्मीदों के साथ असेसमेंट सही, भरोसेमंद और काम के बने रहें। सुरक्षा प्रक्रिया को सुरक्षित रखती है, लेकिन असेसमेंट की क्वालिटी और ईमानदारी ही आखिरकार लोगों का भरोसा बनाए रखती है।

शिक्षा पर संसदीय स्थायी समिति ने भी परीक्षा के मैनेजमेंट से जुड़ी चिंताओं को उठाया है। उसने पाया कि बड़ी परीक्षाओं में रुकावटों ने छात्रों के भरोसे को प्रभावित किया है। समिति ने परीक्षा प्रणालियों को मज़बूत करने की सिफारिश की, जिसमें जवाबदेही के तरीकों को बेहतर बनाना, आउटसोर्स की गई प्रक्रियाओं में कमियों को कम करना और अहम परीक्षाओं में ज़्यादा भरोसा पक्का करना शामिल है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के निर्माता रटकर सीखने के बजाय काबिलियत-आधारित शिक्षा की ओर बढ़ना चाहते हैं। हालांकि करिकुलम और असेसमेंट में सुधारों का मकसद कॉन्सेप्ट की समझ और प्रॉब्लम-सॉल्विंग को बढ़ावा देना रहा है, लेकिन इन्हें लागू करने का तरीका एक जैसा नहीं रहा है। विशेषज्ञ लोग इसके लिए राज्यों की अलग-अलग क्षमता, फंड की कमी और स्कूल बोर्ड, यूनिवर्सिटी, रेगुलेटर और राज्य सरकारों के बीच ज़रूरी तालमेल की कमी को ज़िम्मेदार मानते हैं। इसके लिए राज्यों, स्कूल बोर्ड, यूनिवर्सिटी और रेगुलेटर के बीच तालमेल की ज़रूरत है, जबकि देश के सबसे पसंदीदा संस्थानों में एडमिशन अभी भी कुछ खास, अहम एंट्रेंस एग्ज़ाम पर ही निर्भर करता है। इससे ज़्यादा होलिस्टिक असेसमेंट की ओर बढ़ने की रफ़्तार भी धीमी हुई है, क्योंकि सीमित सीटों के लिए ज़बरदस्त कॉम्पिटिशन टीचिंग, कोचिंग और स्टूडेंट की तैयारी के तरीकों को तय करता है।

समस्या एंट्रेंस एग्ज़ाम के होने में नहीं, बल्कि उन्हें ज़रूरत से ज़्यादा अहमियत देने में है। अक्सर एक ही परीक्षा से छात्र के पूरे एजुकेशनल सफ़र का अंदाज़ा लगाने की उम्मीद की जाती है। ऐसे एग्ज़ाम खास हालात में परफ़ॉर्मेंस तो दिखाते हैं, लेकिन क्रिएटिविटी, कम्युनिकेशन, कंसिस्टेंसी, मुश्किल हालात में डटे रहने की क्षमता या अलग-अलग हालात में जानकारी का इस्तेमाल करने जैसी खूबियों का पूरी तरह से आकलन नहीं कर पाते। जब एक ही स्कोर पर इतना कुछ निर्भर करता है, तो असेसमेंट में कोचिंग, रटने, बहुत ज़्यादा दबाव और गलत तरीकों का असर पड़ने का खतरा बढ़ जाता है।

हाल के सालों में भारत के सबसे पसंदीदा मेडिकल और इंजीनियरिंग संस्थानों में एडमिशन के लिए कॉम्पिटिशन और तेज़ हो गया है। हायर एजुकेशन की क्षमता में कुल बढ़ोतरी के बावजूद, कई बड़े सरकारी संस्थानों में सीटों की तुलना में अप्लाई करने वालों की संख्या तेज़ी से बढ़ी है। इस निर्भरता को कम करने के लिए एग्ज़ाम-सेंट्रिक एजुकेशन सिस्टम से हटकर ऐसे सिस्टम की ओर बढ़ना ज़रूरी है जो सफलता के कई रास्ते दे। हमें एग्ज़ाम-सेंट्रिक अप्रोच से हटकर स्टूडेंट-सेंट्रिक अप्रोच अपनानी होगी। जब स्टूडेंट सिर्फ़ सोची-समझी प्रतिष्ठा के बजाय अपनी दिलचस्पी, ताकत और उम्मीदों के आधार पर सोच-समझकर फ़ैसले लेते हैं, तो कुछ खास एग्ज़ाम पर दबाव अपने आप कम होने लगता है। हालांकि, सीखने के अलग-अलग नतीजों का असर कॉम्पिटिशन एग्ज़ाम में बैठने से बहुत पहले ही स्टूडेंट की तैयारी पर पड़ने लगता है।

हायर एजुकेशन (उच्च शिक्षा) में भारत ने पहुँच को काफ़ी बढ़ाया है। 'ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन' (अखडक्रए) के अनुसार, 2023-24 में एनरोलमेंट 4.5 करोड़ छात्रों तक पहुँच गया, जबकि ग्रॉस एनरोलमेंट रेश्यो ¯ जो शिक्षा के किसी खास स्तर पर एनरोलमेंट को उस स्तर के लिए तय उम्र-वर्ग की आबादी के प्रतिशत के तौर पर मापता है ¯ 2014-15 में 23.7 से बढ़कर 30 हो गया। ❑

पास होने के लिये 33 प्रतिशत अंक ही काफी क्यों?

❑
रोशनी चक्रवर्ती

भारत में पास होने के लिए 33 प्रतिशत अंक ही क्यों काफ़ी हैं? लेखिका इस नियम के पीछे की हैरान करने वाली औपनिवेशिक कहानी बता रही है। सं.

❑

भारत में परीक्षा पास करने के लिए 33 प्रतिशत अंकों की जरूरत होती है। इसका मतलब हुआ कि परीक्षा पास करने के लिए सिर्फ़ एक-तिहाई सवालों के सही जवाब देना ही काफ़ी है। आज ज़्यादातर प्रतियोगी परीक्षाओं में 33 प्रतिशत का स्कोर बहुत खराब माना जाएगा। फिर भी, पूरे भारत के स्कूलों और विष्यवविद्यालयों में, लंबे समय से यही वह जादुई नंबर रहा है जो फेल और पास के बीच फ़र्क तय करता है।

33 प्रतिशत के पासिंग मार्क्स कोई भारतीय परंपरा नहीं है। ऐसा ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान शुरू हुआ, जब शिक्षा प्रणाली को इस तरह से ढाला गया था कि औपनिवेशिक नौकरशाही के लिए क्लर्क, अनुवादक और निचले स्तर के प्रशासक तैयार किये जा सकें। इसका मकसद रिसर्चर, इनोवेटर या क्रिटिकल थिंकर बनाना नहीं था।

दिलचस्प बात यह है कि इतिहासकार आज भी ऐसी किसी एक ब्रिटिश नीति का ज़िक्र नहीं कर पाते जो साफ़ तौर पर यह बताती हो कि पास होने के लिए 33 प्रतिशत अंक ही क्यों तय किए गए थे। ऐसा लगता है कि यह आंकड़ा किसी एक बड़े फ़ैसले के बजाय औपनिवेशिक परीक्षा प्रणाली के विकास के दौरान धीरे-धीरे तय हुआ।

यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश परीक्षाओं में कुल अंकों का एक-तिहाई हिस्सा न्यूनतम योग्यता का पैमाना बन गया था। दूसरे शब्दों में, इसे शैक्षिक उत्कृष्टता के लिए नहीं, बल्कि प्रशासनिक कामकाज में कुशलता लाने के मकसद से बनाया गया था।

एक और वजह खुद यूनिवर्सिटी सिस्टम में है। ब्रिटेन और ब्रिटिश भारत में शुरुआती विश्वविद्यालय अक्सर कैंडिडेट्स को पास, सेकंड क्लास और फर्स्ट क्लास में बांटती थीं, और कई परीक्षाओं में लगभग एक-तिहाई मार्क्स धीरे-धीरे पास होने के लिए ज़रूरी मिनिमम स्टैंडर्ड बन गए।

आज़ादी के बाद, भारत ने औपनिवेशिक दौर के परीक्षा सिस्टम को काफी हद तक बनाए रखा। सरकारें बदलीं, किताबें बदलीं और सिलेबस भी बदले, लेकिन पासिंग मार्क्स ज़्यादातर वही रहे।

यह सवाल किसी ने नहीं उठाया कि क्यों कोई छात्र सैद्धांतिक रूप से किसी पेपर के दो-तिहाई सवालों के सही जवाब न दे पाने के बावजूद पास हो सकता है। यह मुश्किल

सवाल किसी ने खड़ा नहीं किया कि अगर कोई विद्यार्थी गणित, केमिस्ट्री या इकोनॉमिक्स की सिर्फ़ एक-तिहाई समझ दिखाता है, तो क्या सिस्टम को उसे उस विषय में पास होने का सर्टिफ़िकेट देना चाहिए?

बोर्ड परीक्षाओं में यह मामला और भी पेचीदा हो जाता है, जहां छात्रों को पास होने में मदद करने के लिए अक्सर ग्रेस मार्क्स दिए जाते हैं। कुछ मामलों में, जो स्टूडेंट्स एक या ज़्यादा विषयों में पासिंग मार्क्स से पीछे रह जाते हैं, उन्हें मॉडरेशन पॉलिसीज़ के ज़रिए पासिंग लेवल तक पहुंचा दिया जाता है। इसके समर्थक कहते हैं कि इससे एक गलती की वजह से छात्र का भविष्य बर्बाद होने से बच जाता है। मगर आलोचकों का कहना है कि इससे सिर्फ़ सीखने में रह गई कमियां छिप जाती हैं।

जब कोई सिस्टम छात्रों को यह बताता है कि एक-तिहाई (33 प्रतिशत) मार्क्स ही काफ़ी हैं, तो सीखने की सोच बदल जाती है। ऐसे में कई छात्र विषय में महारत हासिल करने के बजाय सिर्फ़ पास होने की तैयारी करने लगते हैं। कोचिंग सेंटर सेफ़ स्कोर का हिसाब लगाते हैं। शिक्षक संभावित सवालों पर ध्यान देते हैं। परिवार विषय को गहराई से समझने के बजाय पास होने की खुशी मनाते हैं।

बोर्ड परीक्षक अक्सर छात्रों को 33 प्रतिशत से ऊपर पहुंचाने के लिए ग्रेस मार्क्स देते हैं। इसके पीछे सहानुभूतिपूर्ण सोच होती है। मकसद यह होता है कि कुछ मार्क्स की वजह से किसी छात्र का साल बर्बाद न हो। लेकिन इससे एक अजीब विरोधाभास पैदा होता है। अगर किसी छात्र को सच में कोई विषय समझ नहीं आया है, तो मार्क्स को कृत्रिम रूप से बढ़ाने से समस्या हल नहीं होती। यह बस समस्या को टाल देता है। यह कमी आगे की कक्षाओं, प्रतियोगी परीक्षाओं या नौकरी के समय फिर से सामने आती है।

आज, भाषाओं, ह्यूमैनिटीज और सोशल साइंसेज में पूरे नंबर मिलना आम बात हो गई है। सख्त मार्किंग स्कीम, ज़रूरी कीवर्ड और छोटे जवाबों ने मूल्यांकन के तरीके को बदल दिया है। जैसे-जैसे हर जगह नंबर बढ़ रहे हैं, इस बात पर सवाल उठने लगे हैं कि ये नंबर असल में क्या दिखाते हैं? कॉलेज में क्या होता है?

33 प्रतिशत वाली सोच स्कूल के बाद खत्म नहीं होती। कई विश्व विद्यालय आज भी 33 प्रतिशत या 40 प्रतिशत को ही पास होने के लिए न्यूनतम ज़रूरी मानक मानती हैं।

इससे छात्र अक्सर विषय को गहराई से समझने के बजाय पेपर पास करने के लिए ज़रूरी न्यूनतम पढ़ाई का हिसाब लगाते हैं। अटेंडेंस, इंटरनल असेसमेंट और मॉडरेशन कभी-कभी स्टूडेंट्स को पास कराने का ज़रिया बन जाते हैं। इससे स्टूडेंट्स कई सेमेस्टर तो पार कर लेते हैं, लेकिन उनके कॉन्सेप्ट्स में, खासकर बुनियादी विषयों में, बड़ी कमियां रह जाती हैं।

एम्प्लॉयर्स अक्सर शिकायत करते हैं कि ग्रेजुएट्स के पास डिग्री तो होती है, लेकिन प्रैक्टिकल समझ की कमी होती है। हालांकि इसके अनेक जटिल कारण हैं, लेकिन आलोचकों का तर्क है कि पास होने के लिए कम नंबरों की ज़रूरत एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देती है जहां ज्ञान में महारत हासिल करने से ज़्यादा ज़रूरी परीक्षा पास करना होता है। इसका नतीजा एक ऐसा सिस्टम है जो उत्कृष्टता के बजाय सहनशक्ति को बेहतर ढंग से मापता है।

अजीब बात है कि जिस देश ने यह सिस्टम शुरू किया था, वह खुद अब इसे नहीं अपनाता। ब्रिटेन के स्कूल अब पास होने के लिए तय 33 प्रतिशत मार्क्स के बजाय ग्रेड बाउंड्री का इस्तेमाल करते हैं, जो हर साल परीक्षा की मुश्किल और कुल परफॉर्मेंस के आधार पर बदलती रहती हैं।

आज भारत भी इस मामले में अलग-थलग है। जहाँ कई भारतीय बोर्ड और यूनिवर्सिटीज़ अभी भी पास होने के लिए 33% या 35% मार्क्स का नियम अपनाती हैं, वहीं णघ जैसे देश फ्लेक्सिबल ग्रेड बाउंड्री पर भरोसा करते हैं, और णड की यूनिवर्सिटीज़ में अक्सर अलग-अलग कोर्स पास करने के लिए लगभग 60% या उससे ज़्यादा मार्क्स की ज़रूरत होती है।

क्या भारत को भी इस नियम को औपनिवेशिक सोच से आज़ाद करना चाहिए? भारत कानूनों से लेकर प्रशासनिक ढांचों तक, औपनिवेशिक दौर की कई व्यवस्थाओं की समीक्षा कर रहा है। शिक्षा व्यवस्था की भी इसी तरह समीक्षा की जानी चाहिए।

दुनिया भर में, कई शिक्षा प्रणालियों ने पासिंग मार्क्स के बजाय योग्यता-आधारित मूल्यांकन, लगातार मूल्यांकन और समस्या-समाधान, बातचीत और ज्ञान के इस्तेमाल पर केंद्रित कौशल प्रदर्शन पर ध्यान देना शुरू कर दिया है।

असली सवाल यह नहीं है कि पासिंग मार्क्स कितने होने चाहिए। सवाल यह है कि क्या सिर्फ़ एक प्रतिशत से सीखने की प्रक्रिया को सही ढंग से समझा जा सकता है।❑

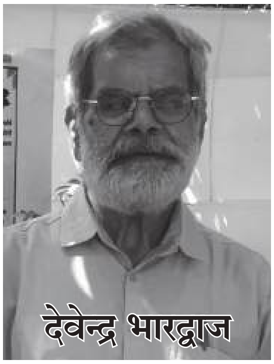
देवेन्द्र भारद्वाज

प्रकृति बचाना सीखने सिखाने का वनस्पति उत्सव

लेखक वन सेवा के उन वरिष्ठ अधिकारियों में से रहे हैं जिन्हें वनस्पति से प्रेम रहा है। वे समिति के सदस्य और इस उत्सव के मुख्य संयोजक थे।

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति प्रांगण के 'रमेश थानवी स्मृति वन' में 13 अगस्त को 'वनस्पति उत्सव' मनाया गया। 'ग्रीन हार्मनी' समूह के साथ मिल कर मनाये गये इस उत्सव में लगभग 150 तरह के पेड़-पौधों की अनुपम प्रदर्शनी लगाई गई। इनमें सबसे आकर्षण का केंद्र 51 साल का बरगद बोन्साई रहा। करीब पांच घंटे चले इस आयोजन में 300 से अधिक लोग शामिल हुए। मानसरोवर स्थित सेंट विलफ्रेड कॉलेज के वनस्पति विभाग के छात्र-छात्राएं इसमें भाग लेने विशेष रूप से आए थे। उत्सव का उद्घाटन डिजिटल शिक्षा के सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान राजस्थान नॉलेज कॉर्पोरेशन के प्रबंध निदेशक रवींद्र शुक्ला ने किया। उत्सव में वनस्पतियों के प्रदर्शन के अलावा वनस्पतिविदों ने प्रकृति के संरक्षण पर आम-जन से चर्चाएं कीं और उनकी शंकाओं के समाधान भी सुझाए।

इस अवसर पर वनस्पतियों की वर्णमाला पर बनाये गए एक पोस्टर का विमोचन भी हुआ। यह पोस्टर विभिन्न स्कूलों में निशुल्क वितरित किया जायेगा।

समिति के उद्यान में एक नवग्रह संकुल का भी उद्घाटन हुआ। इसमें सौरमंडल के सभी ग्रहों के शास्त्रों में वर्णित प्रतीक वनस्पतियां लगाई गई हैं। बीच में सूर्य तथा उसके चारों ओर नौ ग्रह। सभी पर उन वनस्पतियों की जानकारी देते हुए पट्ट भी लगाए गए हैं।

इस अवसर पर समिति उद्यान में लगे सभी वृक्षों पर क्यूआर कोड भी लगाए गए जिन्हें स्कैन कर उस वनस्पति की पूरी जानकारी प्रपथ की जा सकती है।

सबका कहना था कि प्रकृति, धैर्य और सृजन से जुड़ा रहना उनके जीवन का एक हिस्सा हैं।

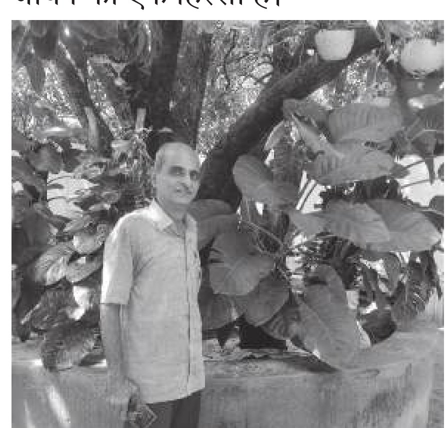

उत्सव में जिन विशेषज्ञ प्रकृति प्रेमियों ने भाग लिया उनमें सबसे अधिक उम्र वाले बसंत किशोर पारीक का कहना था कि वे बोनसाई और दूसरे पौधों के साथ रोज़ दो घंटे व्यस्त रहते हैं। भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारी रहे कुलभूषण शर्मा करीब 25 वर्षों से बोनसाई तैयार करने और संवारने में लगे हैं। उनके लिये हर पौधे को आकार लेते और विकसित होते देखना बेहद आनंददायक अनुभव है।

केंद्र सरकार से सेवानिवृत राजेंद्र सिंह के घर में विभिन्न प्रजातियों के लगभग 50-60 छोटे-बड़े जमीनी वृक्ष तथा करीब 600 गमले लगे हैं। वे कहते हैं कि मेरे घर में छोटा जंगल है या छोटे जंगल में मेरा घर है।

लगभग 35 सालों से छत पर बागवानी करने वाले ज्ञान वशिष्ट ने कोरोना काल में हैंगिंग बास्केट लगाना शुरू किया। अब उनके पास छत पर लगभग 600 विभिन्न वैरायटी के हैंगिंग बास्केट हैं। वे बताते हैं कि इन बास्केट को हल्का बनाने के लिए कोकोपीट तथा पत्तों की खाद बराबर मात्रा में मिलाने से नमी बनी रहती है।

बैंक से सेवानिवृत्ति के बाद संजीव मोहन शर्मा का अधिकांश समय पौधों के बीच ही बीतता है। अभी उनके पास लगभग 300 तरह के पौधे हैं,वे कहते हैं कि एक छोटे से पौधे को एक वृक्ष के रूप में विकसित करने में एक अलग ही आनंद प्राप्त होता है।

उत्सव में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने वालों में महिलाओं की भागीदारी भी कम नहीं थी। सुनीति गोयल कहती हैं प्रकृति से उनका नाता बचपन से रहा है। उन्हें 'ट्रे गार्डन' बनाने का विशेष शौक है, जहां उनकी रचनात्मकता को नए पंख मिलते हैं।

केंद्रीय विद्यालय संगठन से सेवानिवृत्त शिक्षिका अलका पाठक एक हजार से भी अधिक विभिन्न प्रजातियों के पौधों का एक बृहद परिवार संधारित किया हुआ है। वे अपने पति, त्रिवेंद्र स्वरूप शर्मा भी, जो बिजली विभाग से मुख्य सूचना विज्ञान अधिकारी के पद से सेवानिवृत हैं, के साथ मिल कर बागवानी की विभिन्न विधाओं को कलात्मकता के साथ आम लोगों को प्रेरित करने के काम में लगी हैं। विभिन्न प्रकार के वृक्ष, पौधे, पुष्प और बोनसाई केन्द्रीय विद्यालय से सेवानिवृत्त सरबजीत कौर की पहली पसंद हैं। पौधों से संबंधित रचनात्मक कार्य करने की वे शौकीन हैं। कहती हैं हमारा बगीचा एक छोटी सी दुनिया है जिसमें आकर हम इस बड़ी सी दुनिया को भूल जाते हैं। हरिश्चंद्र माथुर स्टेट इंस्टीटयूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की पुस्तकालयाध्यक्ष रही अनीता बोड़ा ने ट्रे में प्रकृति को प्रस्तुत करने का अपना महारथ प्राप्त है तथा माइक्रो ग्रीन वनस्पतियों का प्रसार करती हैं पौष्टिकता में गागर में सागर की भांति है।❑

अन्नपूर्णा शुक्ला

चित्रकार कथाकार तथा कला शिक्षक रचनाकर्म के उस दर्शन को उजागर कर रहीं हैं जो मानव के विकास की लंबी यात्रा में कहीं पीछे छूट गया है। सं.

आर्ट–थैरेपी : आदिम चेतना से आधुनिक युवा मन तक

कला का इतिहास सभ्यता से पुराना है, क्योंकि कला की आवश्यकता शब्दों से पहले जन्मी थी। जब मनुष्य बोलना नहीं जानता था, तब उसने रेखा खींची। प्रागैतिहासिक गुफाओं की दीवारों पर उभरे पशु, हाथों की छापें और अनगढ़ आकृतियां किसी सौंदर्य–बोध की खोज नहीं थीं, वे जीवन की सहज प्रतिक्रिया थीं। आदिम मानव ने जानकर कुछ नहीं किया; उसके भीतर जो बह रहा था, वही बाहर आ गया। यह बहाव किसी योजना का परिणाम नहीं था। वह ठीक वैसा ही था, जैसे मां का अपने शिशु को थाम लेना ˉ बिना सिखाए, बिना सोचे। भय, उल्लास, थकान, शोक, जो भी भीतर उठा, वह रुक नहीं पाया। रेखा और रंग गतिमय हो गए। उस समय कला कोई अलग कर्म नहीं थी; वह जीवन की आदत थी। इसीलिए मन और जीवन के बीच संतुलन बना रहता था।

प्रागैतिहासिक मानव को यह जानने की ज़रूरत नहीं थी कि यदि कला चली गई तो मन टूट जाएगा, क्योंकि उसके लिए कला कभी अलग हुई ही नहीं थी। उसकी अभिव्यक्ति उसकी श्वास की तरह थी स्वतः,

अनिवार्य और जीवनरक्षक। प्रकृति ने उसे चारों ओर से सहेज रखा था। जंगल, आकाश, नदी, मिट्टी सब उसके संतुलन के सहभागी थे। यह कोई अभ्यास नहीं था, यह प्रकृति का उपहार था। यदि ईश्वर का कोई रूप था, तो वह प्रकृति ही थी, जो मनुष्य को उसकी सीमाओं, उसकी गति और उसकी भावनाओं के साथ स्वीकार करती थी। आदिम समाज में नृत्य, शरीर पर रंग, सामूहिक अनुष्ठान, ये सब किसी चिकित्सा–पद्धति के नाम से नहीं जाने जाते थे, पर उनका कार्य वही था जो आज 'आर्ट–थैरेपी' करती है। पीड़ा अकेले नहीं सही जाती थी, वह समुदाय और प्रकृति के बीच बह जाती थी। इसीलिए मानसिक असंतुलन स्थायी नहीं बन पाता था। आज जिसे हम मानसिक स्वास्थ्य कहते हैं, वह तब जीवन के स्वाभाविक प्रवाह की तरह मौजूद था।

समस्या तब शुरू हुई, जब सभ्यता ने इस बहाव को रोकना शुरू किया। जब मनुष्य से कहा गयायह मत कहो, यह मत दिखाओ, यह मत रचो। जब प्रकृति को संसाधन में बदला गया, और अभिव्यक्ति को अनुशासन में।

आज का युवा इसी टूटन का सबसे तीव्र रूप झेल रहा है। उसके भीतर ऊर्जा है, बेचैनी है, रचना की तीव्र इच्छा है - पर न उसे वैसा समाज मिल रहा है, न वैसा सांस्कृतिक परिवेश, जहां वह सहज रूप से व्यक्त हो सके। न पर्याप्त पत्रिकाएं हैं जिन्हें वह धैर्य से पढ़ सके और सुन सके; न ऐसे मंच जहां प्रयोग को असफलता न माना जाए। प्रकृति से भी उसका रिश्ता लगभग टूट चुका है। कंक्रीट के जंगल, डिजिटल जीवन और लगातार स्क्रीन

की चमक ने उसे उस लय से अलग कर दिया है, जहां मन अपने आप संतुलन खोज लेता था। इसलिए आज का फ्रस्ट्रेशन आलस्य नहीं है। यह रुकी हुई सृजनात्मकता और टूटी हुई प्रकृति–स्मृति का दर्द है।

'आर्ट–थैरेपी' इसी बिंदु पर आदिम चेतना की ओर लौटने का प्रस्ताव रखती है। यह युवा से यह नहीं पूछती कि वह क्या बनाए, क्यों बनाए, कितना अच्छा बनाए। वह बस उसे बहने की अनुमति देती है - जैसे आदिम मनुष्य बहा करता था। यह कोई ज़बरदस्ती नहीं है; यह सहजता है। यह याद दिलाना है कि अभिव्यक्ति कोई उपलब्धि नहीं, जीवन की आदत है।

' डांस थेरेपी' में शरीर को कोई स्टेप नहीं सिखाए जाते। शरीर को बस यह याद दिलाया जाता है कि वह पहले से जानता है। लंबे समय से रुकी भावनाएं गति के साथ ढीली पड़ने लगती हैं। जब युवा बिना दर्शक, बिना मंच, केवल गति में आता है, तो भीतर जमी बेचैनी रास्ता खोज लेती है। यह नृत्य प्रदर्शन नहीं होतायह लौटना होता है।

'कलर थेरेपी' में रंग निर्णय नहीं मांगते। युवा रंग नहीं चुनता - प्रतिक्रिया करता है। वही प्रतिक्रिया उसकी मानसिक स्थिति को बिना शब्दों के सामने रख देती है। ठीक वैसे ही, जैसे आदिम मनुष्य ने पहली बार गुफा की दीवार पर हाथ रखा था - बिना यह जाने कि वह चित्रण कर रहा है।

इस संदर्भ में विन्सेंट वान गॉग आधुनिक सभ्यता में फंसे उस आदिम मनुष्य की तरह हैं, जिसका बहाव टूट गया था, पर पूरी तरह रुका नहीं था। उनके रंग असंतुलित नहीं हैं - वे अतिप्रवाह से भरे हुए हैं। 'द स्टारी नाइट' का आकाश इसलिए घूमता है, क्योंकि भीतर का आकाश स्थिर नहीं रह पा रहा था। वान गॉग की कला हमें यह सिखाती है कि जब बहाव को समाज स्वीकार नहीं करता, जब प्रकृति से कटे हुए जीवन में संवेदना को जगह नहीं मिलती, तब वह कला के रास्ते ज़ोर से फूट पड़ता है। यह संयोग नहीं है कि वान गॉग का सबसे गहरा संवाद

प्रकृति से रहा आकाश, खेत, पेड़, रात, सूरज। प्रकृति उनके लिए दृश्य नहीं थी; वह सहारा थी, संवाद थी, एक जीवित थैरेपी थी। जहां समाज उन्हें अस्वीकार करता है, वहां प्रकृति उन्हें सुनती है। उनके रंगों का अतिप्रवाह दरअसल उस टूटे हुए प्राकृतिक रिश्ते को जोड़ने की कोशिश है।

हिंदी साहित्य में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' भी इसी बहाव के प्रतिनिधि हैं। उनकी कविता किसी अनुशासन से नहीं, बल्कि भीतर के दबाव से निकलती है। वे लिखते नहींवे उबरते हैं। उनकी रचना-प्रक्रिया स्वयं एक आंतरिक थैरेपी है। निराला का मन भी प्रकृति से गहरे जुड़ा हैआकाश, धूप, पवन, पत्तेउनकी कविता में केवल दृश्य नहीं, सहचर हैं। यदि निराला आज के युवा को देखें, तो शायद वे उसे यही कहेंरुको मत, बहो। शब्द में, रंग में, स्वर मेंकहीं भी। पर साथ ही यह भी कहेंप्रकृति में लौट आओ, क्योंकि वहीं तुम्हारा संतुलन सुरक्षित है।आज आवश्यकता यह नहीं है कि युवाओं को कला-थैरेपी है। उनके रंग पृथ्वी से उठे हुए लगते हैंमटमैले, गहरे, धैर्यवान जैसे आदिम मानव की स्मृति अब भी उनमें सांस ले रही हो। अमृता के कैनवस पर प्रकृति की पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सहभागी है; शरीर, रंग और भावतीनों एक ही संवेदनात्मक इकाई बन जाते हैं। यह वही सहज संतुलन है, जिसे प्रागैतिहासिक मनुष्य जानता था और जिसे आधुनिक सभ्यता ने खो दिया।

आज, जब युवा लगातार 'प्रदर्शन' के दबाव में हैरील, मंच, प्रतियोगिता और तुलना के बीचअमृता की यह चुप्पी और भी प्रासंगिक हो जाती है। वह हमें याद दिलाती हैं कि हर अभिव्यक्ति का उद्देश्य दृश्य होना नहीं, बल्कि मुक्त होना है।

इस प्रकार 'आर्ट-थैरेपी' और 'इकोथेरेपी' केवल उपचार की आधुनिक पद्धतियां नहीं हैं; वे मनुष्य को उसके भीतर के उस सहज संतुलन से फिर जोड़ने का माध्यम हैं, जिसे आधुनिक जीवन की आपाधापी ने कहीं पीछे छोड़ दिया है। वान गॉग का प्रकृति से संवाद, निराला की रचना की बेचैनी और अमृता शेरगिल की मौन संवेदनातीनों अलग-अलग रूपों में यही बताते हैं कि सृजन मनुष्य के भीतर के तनाव को अभिव्यक्ति का रास्ता देता है। आज के युवा के लिए कला इसलिए केवल सृजन का माध्यम नहीं, स्वयं से जुड़ने की एक राह भी हो सकती है। जब कला और प्रकृति मनुष्य के जीवन में फिर से स्थान पाते हैं, तो भीतर का अव्यवस्थित संसार धीरे-धीरे अपनी लय पहचानने लगता है।

कला अंततः मन को बदलने से पहले उसे सुनना सिखाती हैऔर शायद यही किसी भी उपचार की पहली शर्त है।❑

बाल शिक्षण में नुक्कड़ नाटक

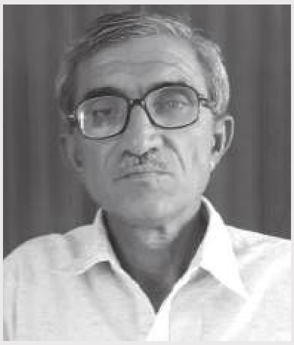

संग्राम सिंह सोढा

डिजिटल युग में जब बच्चे रील के जाल में उलझे रहते हैं। ऐसे में बाल नुक्कड़ नाटक उन्हें असली दुनिया और अपने परिवेश से जोड़े रख सकते हैं। इसे अपनाने की पैरवी करता आलेख। सं.

हालांकि हम एक डिजिटल युग में जी रहे हैं, जहां तकनीक बच्चों के सीखने का एक बड़ा हिस्सा बन चुकी है। लेकिन बाल शिक्षा में नुक्कड़ नाटकों का महत्व आज भी कम नहीं हुआ है, बल्कि डिजिटल युग में इसकी ज़रूरत और बढ़ गई है।

शिक्षा का अर्थ केवल किताबों को रटना और परीक्षा में अंक ले आना नहीं है। शिक्षा का सच्चा उद्देश्य है बच्चे के मन को संस्कारित करना, उसकी सोच को विस्तार देना और उसके चरित्र को इस तरह गढ़ना कि वह समाज के लिए उपयोगी नागरिक बन सके। आज की शिक्षा पद्धति में करके सीखने, जीकर सीखने और महसूस करके सीखने की जगह बहुत कम रह गई है। बच्चा सुनता है, लिखता है और भूल जाता है। डिजिटल युग में बच्चे पहले से ही मोबाइल, टैबलेट और टीवी स्क्रीन पर बहुत अधिक समय बिता रहे हैं। ऐसे में आवश्यकता है एक ऐसे माध्यम की जो बच्चे को केवल जानकारी न दे बल्कि उसे अनुभव भी कराए। वह माध्यम है नुक्कड़ नाटक जो बच्चों को स्क्रीन से दूर ले जाकर एक जीवंत और शारीरिक रूप से सक्रिय माहौल से जोड़ता है।

डिजिटल स्क्रीन एक तरफा होती है, जबकि नाटक इंसानी भावनाओं को सामने से महसूस कराता है। बाल शिक्षण में इसकी उपयोगिता इसलिए और बढ़ जाती है क्योंकि बच्चा स्वभाव से ही अनुकरणशील और अभिनयप्रिय होता है। वह जो देखता है उसे तुरंत अपना लेता है। जब वही बच्चा किसी सामाजिक समस्या को नाटक के रूप में देखता है या स्वयं उसका पात्र बनता है तो वह बात उसके दिल में उतर जाती है। इस तरह नुक्कड़ नाटक केवल मनोरंजन नहीं रहता, वह शिक्षा की सबसे प्रभावी विधि बन जाता है। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है आचरण ही परम धर्म है। नाटक के द्वारा बच्चा अच्छे आचरण को देखता है और उसे अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा लेता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि नुक्कड़ नाटक बालक के बौद्धिक विकास के साथ-साथ नैतिक और सामाजिक विकास का भी साधन है। जब बच्चे कलाकारों को सामने अभिनय करते, गाते या रोते-हंसते देखते हैं, तो उनमें दूसरों के प्रति सहानुभूति और सामाजिक समझ ज़्यादा गहराई से विकसित होती है।

रील्स और शॉर्ट्स के इस दौर में बच्चों का ध्यान केंद्रित करने की क्षमता) बहुत कम हो गयी है। नुक्कड़ नाटक बच्चों को एक जगह रुककर, कहानी के उतार-चढ़ाव को समझने और धैर्यपूर्वक सुनने की आदत डालते हैं। डिजिटल कंटेंट अक्सर वैश्विक या पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होता है, किन्तु नुक्कड़ नाटक स्थानीय भाषाओं, मुहावरों, लोकगीतों और क्षेत्रीय समस्याओं को सरल तरीके से बच्चों के

सामने रखते हैं, जिससे वे अपनी संस्कृति से जुड़े रहते हैं। यह बच्चों को बिना किसी तकनीकी फिल्टर के सीधे संवाद करना और अपनी बात को मजबूती से रखना सिखाता है।

यदि हम बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो पाते हैं कि 6 से 14 वर्ष की आयु में बच्चा सबसे अधिक सक्रिय होता है। इस अवस्था में वह केवल सुनकर नहीं सीखता, वह करके सीखता है। मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे ने इसे मूर्त संक्रियात्मक अवस्था कहा है। इस समय यदि बच्चे को कोई विषय केवल व्याख्यान के रूप में पढ़ाया जाए तो वह आधा अधूरा रह जाता है। पर यदि उसी विषय को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जाए तो बच्चा उसमें पूरी तरह डूब जाता है। उदाहरण के लिए यदि हमें पर्यावरण संरक्षण पढ़ाना है तो शिक्षक के सौ बार कहने से उतना असर नहीं होगा जितना एक बच्चे के द्वारा पेड़ का किरदार निभाकर यह कहने से होगा कि मुझे मत काटो, मैं तुम्हें सांस देता हूँ। इसी तरह जल संरक्षण, स्वच्छता, यातायात नियम, बाल अधिकार जैसे विषय नाटक के माध्यम से बहुत सहजता से समझाए जा सकते हैं। नुक्कड़ नाटक की एक और विशेषता यह है कि इसमें कोई भी बच्चा पीछे नहीं रहता। कक्षा में अक्सर चार-पांच बच्चे ही उत्तर देते हैं, बाकी चुप रहते हैं। पर नाटक में हर बच्चे को कोई न कोई भूमिका मिलती है। कोई सूत्रधार बनता है, कोई मुख्य पात्र, कोई सहायक, कोई गीत गाता है। इस तरह हर बच्चा अपने को महत्वपूर्ण महसूस करता है। धीरे-धीरे शर्मीला बच्चा भी मंच पर आकर बोलने लगता है। उसकी झिझक टूटती है और आत्मविश्वास बढ़ता है। कहा गया है: विद्या ददाति विनयम। सच्ची विद्या वही है जो मनुष्य में विनय और आत्मविश्वास दोनों लाए। नुक्कड़ नाटक ठीक यही काम करता है। वह बच्चे को बोलना सिखाता है, सुनना सिखाता है और समाज में सम्मान से जीना सिखाता है।

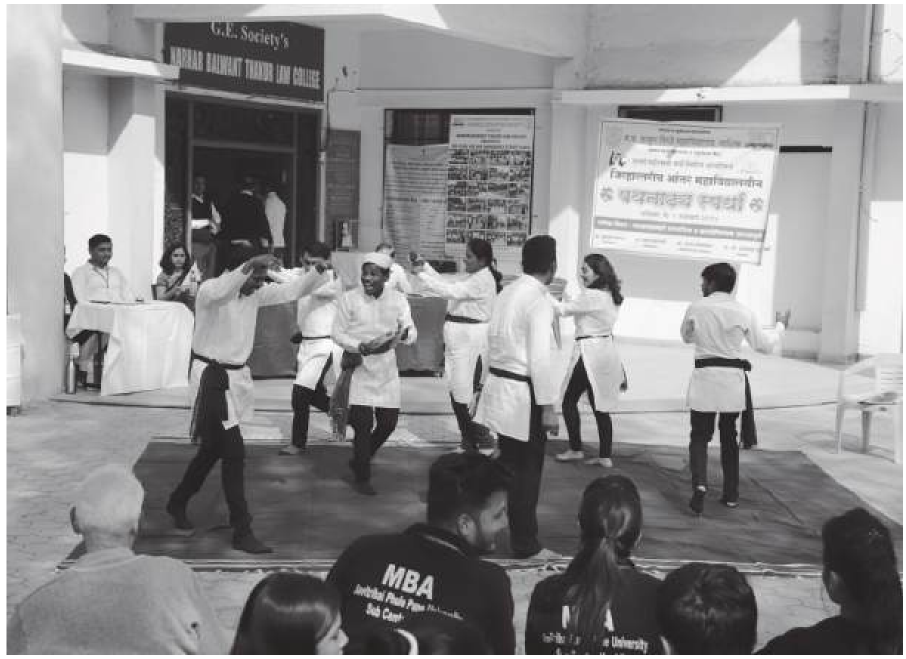

नुक्कड़ नाटक का सबसे गहरा असर बच्चे के व्यक्तित्व और सामाजिक विकास पर पड़ता है। जब बच्चा किसी किरदार को निभाता है तो वह उस किरदार की पीड़ा, खुशी और संघर्ष को महसूस करता है। नाटक बच्चे के हृदय कोमल बनाता है। साथ ही नाटक टीम वर्क भी सिखाता है। कोई भी नाटक अकेला नहीं हो सकता। संवाद, प्रवेश, निकास, पृष्ठभूमि सबको मिलकर करना पड़ता है। इससे बच्चों में सहयोग, तालमेल और जिम्मेदारी की भावना आती है। इस तरह नाटक बच्चे के सर्वांगीण विकास का साधन बन जाता है।

सामाजिक दृष्टि से भी नुक्कड़ नाटक बहुत महत्वपूर्ण है। जब बच्चे स्कूल के गेट पर या गाँव की चौपाल में नाटक करते हैं तो माता-पिता, दादा-दादी, दुकानदार सब देखने आते हैं और स्कूल और समाज के बीच की दीवार टूट जाती है। शिक्षा केवल कक्षा तक सीमित नहीं रहती, वह आंदोलन बन जाती है।

नुक्कड़ नाटक को विद्यालय में नियमित रूप से करने के लिए बहुत बड़े संसाधन या बजट की जरूरत नहीं होती है। केवल इच्छाशक्ति और थोड़ी योजना चाहिए। हर महीने का एक दिन नुक्कड़ दिवस घोषित किया जा सकता है। उस दिन हर कक्षा अपने पाठ्यक्रम से जुड़ा दस मिनट का नाटक करे। शिक्षक और बच्चे मिलकर स्क्रिप्ट लिखें। अभिनय ही असली सजावट है। बड़े बच्चे छोटे बच्चों को प्रशिक्षण दे सकते हैं। इससे बड़ों में जिम्मेदारी और छोटों में सीखने की भावना आएगी।

नाटक का वीडियो बनाकर अभिभावक समूह में भेजा जा सकता है ताकि घर वाले भी देखें और गर्व करें। सरकार हर जिले में बाल नुक्कड़ महोत्सव आयोजित कर सकती है और अच्छे नाटकों को पुरस्कृत कर सकती है। ❑

प्रज्ञालोक का सिंहद्वार होता है इतिहास !

डॉ. कन्हैयालाल खाँड़पकर

लेखक इतिहास बोध का महत्व बताते हुए इस आलेख में उसे मानवीय प्रकृति की विपुल संभावनाओं को जानने का साधन बता रहे हैं। सं.

इतिहास से बढ़ कर शिक्षा व संदेश देने वाला और कोई साधन नहीं। उसकी उपेक्षा का परिणाम उन गलतियों को दोहराना होता है जो अतीत में नानाविध कष्टों का कारण बनी। हमारे आज को संवारने के लिये आवश्यक उपादान इतिहास के अक्षय भंडार में विद्यमान हैं। आवश्यकता है, उससे लाभान्वित होने की। इतिहास जो अनवरत शिक्षा देता है, उसे रेखांकित करते हुए नामी इतिहासज्ञ चार्ल्स ए. बियर्ड ने लिखा है: 'ईश्वर जिन्हें बर्बाद करना चाहता है उन्हें अहंकार के नशे में मग़रूर बना देता है। ईश्वरकी चक्की धीरे पीसती है पर बहुत बारीक पीसती है।'

इतिहास के महत्व को उजागर करते हुए बँकिंचन्द्र चट्टोपाध्याय का कहना था कि, किसी राष्ट्र की प्रगति का आधार है, उसका अपना इतिहास। अपने अतीत से अनभिज्ञ राष्ट्र कभी महान नहीं बन सकता। समय की सिकता पर अपने अमिट पदचिन्ह छोड़ने वाले नेपोलियन की मान्यता थी कि :जिन्हें इतिहास का ज्ञान नहीं होता, वे मृत हैं। महामति फ्रांसिस बेकन ने इतिहास की सामर्थ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है: इतिहास मनुष्य को प्रज्ञावान बनाता है।

जर्मन दार्शनिक हेगल का कहना था कि इतिहास बुद्धिमानों का मार्गदर्शन करता है और मूर्खों को घसीटता है। मारवाड़ के सुधि शासक महाराज मानसिंह (विक्रम संवत् 1860-1900) ने मेहरानगढ़ में पुस्तक प्रकाश की स्थापना के अवसर पर अपने एक श्लोक में पूर्वजों की यशगाथा की उपेक्षा के घातक परिणाम को बड़े प्रभावी ढंग से दर्शाते हुए कहा था: जस आखर लिखै न जठे, वा धरती मर जाय/ संत, सती अर शूरमा सब ओझल व्है जाय।

इतिहास उस सबका लेख-जोखा है, जिसे हम अपना अतीत कहते हैं। हमारा वर्तमान इस अतीत से जुड़ा होता है। अपनी जड़ों को जानने और उससे अन्य लोगों को अवगत कराने के लिये वर्तमान के अतीत को जानना आवश्यक है। अतीत के अज्ञात को खोजना तभी सार्थक होगा जब वह पूर्वाग्रह से मुक्त हो।

इतिहास ही वह प्रयोगशाला है, जिसमें मानव कृतियों का लेखा-जोखा रक्षित है और उसी आधार पर सामाजिक परिवर्तन के वस्तुगत नियम समझे जा सकते हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया के अनुसार इतिहास हमारे जीवन का अभिन्न आयाम है जिससे हम

पलायन नहीं कर सकते। यह हमें वर्तमान और भविष्य में जीने का मार्ग बतलाता है।

इतिहास की उपयोगिता को लेकर प्रश्न खड़े करने वाले लोगों को बीसवीं सदी के ऋषि-कल्प आचार्य विल डूरां द्वारा इस विषय पर दी गई सम्मति पर थोड़ा सा ध्यान देने की आवश्यकता है। मनीषीवर्य अपनी कृति 'द लेसन्स ऑफ हिस्ट्री' में कहते हैं, इतिहास की प्रथम शिक्षा है, विनय। क्योंकि जिस धरती पर हमारा आवास है, वह स्वयं इस अनंत ब्रह्मांड में एक नगण्य बिन्दु है और हमारे जीवन के लिये तो क्षणभंगुर शब्द का प्रयोग भी एक अतिशयोक्ति है। मनुष्यों की अनेक पीढ़ियां पृथ्वी पर निरंतर वृद्धिमान स्वामित्व स्थापित करने की चेष्टा करती रही है किन्तु अंततः इसकी मिट्टी में जीवाश्म बन जाना उसकी नियति है।

इतिहास के बहुविध लाभों का तलस्पर्शी विवेचन करते हुए प्रसिद्ध क्रांतिकारी व चिंतक लाला हरदयाल अपनी कालजयी कृति 'हिन्ट्स फॉर सेल्फ कल्चर' में लिखते हैं कि अनुभवों का एक बड़ा खजाना ऐसा है जिस तक हमारी पहुंच केवल इतिहास के माध्यम से संभव है। इतिहास के अध्ययन से हम दूरदृष्टि से सम्पन्न हो जाते हैं क्योंकि विगत अनेक युगों की घटनाएं हमारे समक्ष कर देता हैं। इतिहास हमारे ज्ञान की लघुकाय धारा को सदानीरा गंगा में बदल देता है। हमारे रीति-रिवाजों और संस्थाओं को भी हम इसी माध्यम से बहाली भांति समझ सकते हैं। इतिहास के अभाव में हम उस राहगीर की भांति होंगे, जिसे यह भी मालूम नहीं हो कि वह कहां से आया है? मानवीय प्रकृति की विपुल संभावनाओं को जानने का साधन भी इतिहास ही है। मनुष्य के सारे गुण-अवगुण इतिहास के आईने में स्पष्ट रूप से उभरते हैं।

इतिहास के महत्व को दर्शाते हुए चीनी दार्शनिक कन्फूशियस ने सदियों पूर्व कहा था: युद्धरत राष्ट्रों में शांति और व्यवस्था की स्थापना और भावी पीढ़ी के विकास के लिये नैतिकता की स्थापना आवश्यक है और इतिहास ही नैतिकता की स्थापना का एकमात्र साधन है।

इतिहास शासकों की कहानी मात्र नहीं होता। सिर्फ शासक ही इतिहास नहीं रचते। शासित भी इतिहास का अभिन्न अंग होते हैं। जितना महत्वपूर्ण इतिहास लेखन है, उतना ही महत्वपूर्ण है 'इतिहास बोध'। इतिहास बोध व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव जाति को मानव विकास यात्रा के उत्कर्ष - अपकर्ष से अवगत कराता है। इसलिये इतिहास के विद्वानों का अभिमत है कि सच्चा इतिहास तथ्यों का संकलन मात्र नहीं होना चाहिए। इसे व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक और जनपरक भी होना चाहिये।

सत्ताधारियों की परिक्रमा से परे जन इतिहास के लेखन की शुरुआत प्राचीन यूनान में हुई। वहां इतिहास लेखकों के एक वर्ग ने स्थानीय योद्धाओं की वीरता का यशोगान किया। आधुनिक युग में फ्रांस की राज्यक्रांति के बाद जन इतिहास लेखन की परंपरा शुरू हुई। सन् 1930 के लगभग फ्रैंकफ़र्ट स्कूल ने फ्रांसीसी क्रांति के संदर्भ में 'जन' को इतिहास लेखन में केन्द्रीय स्थान प्रदान किया।

सत्ता सुंदरी के मोहपाश में जकड़े शासकों का विवेक इतना निस्तेज हो जाता है कि वे स्वयं को सृष्टि का केंद्र समझ कर अपनी और संसार की नश्वरता को विस्मृत कर मर्यादाहीन आचरण के कीर्तिमान स्थापित करने में लग जाते हैं। इतिहास का बोध ही उन्हें अहम्मन्यता से उपाजे कदाचरण से पंकिल होने से बचा सकता है। इस सार्वभौम सच्चाई से इतिहास ही उनका साक्षात्कार कराता है।

हाथा परबत तोलता दिन में सौ-सौ बार वे सामंत माटी मिल्या भांडा घडै कुंभार ।

इतिहास के सतत प्रवाही अग्रगामी प्रयाण में चेतावनी के ये स्वर प्रतिध्वनित होते रहते हैं कि अनीति व अनाचार अंततः सर्वनाश की ओर ही ले जाते हैं। लोक मानस में इस तथ्य को बड़े सटीक ढंग से उकेरा गया है।

अनीति से जावत है राज, तेज अर वंश।
तीनू ताला जड़गा रावण, कौरव, कंस।।

निरंतर परिवर्तनशील संसार में कुछ भी चिरंतन नहीं। 'यावद् चन्द्र दिवाकरौ' सत्तासीन रहने का भ्रम पालने वाले सत्ताधीशों को इतिहास सचेत करता है कि, वो काफ़िले कि फ़लक जिनके पांव का था गुबार। राहे हयात से भटके तो गर्द भी न मिली।।

इतिहास इस बात असंदिग्ध प्रमाण है कि जिन्होंने सत्ता के पायदानों पर आरोहण के पश्चात शासक के मूल कर्तव्य की अनदेखी करके सत्ता को प्रजापीड़न काजरिया बना दिया, उन्हें जनाक्रोश ने मिट्टी में मिला दिया। इसका सटीक उदाहरण है, बीसवीं सदी में रूस की जारशाही का समूलोच्छेद। राज करंता रूस जार बंदूकां जोर सूं/ प्रजा कढ़ियौ फूस भली न अतगत भांनिया।।

निस्संदेह इतिहास से बढ़ कर सद्मार्ग की ओर प्रेरित कर सक्ने में समर्थ और कोई मार्गदर्शक दुर्लभ है।❑

गलत सवाल से सही जगह पहुंचने की शिक्षा

❑

संजय शर्मा

टाइम्स ऑफ इंडिया के वरिष्ठ पत्रकार एक अनोखे उदाहरण से इस आलेख में शिक्षा की एक नई अंतरदृष्टि दे रहे हैं। सं.

❑

अगर कोई शिक्षक ब्लैकबोर्ड पर आकर विद्यार्थियों से सिर्फ़ तीन लाइनों का इस्तेमाल करके एक स्क्वेयर (चतुर्भुज) बनाने को कहे, तो आप क्या करेंगे? हममें से ज़्यादातर लोग हैरान रह जाएंगे ˉ आखिर, एक स्क्वेयर में, परिभाषा के हिसाब से, चार साइड होने चाहिए। यही चैलेंज एक भारतीय शिक्षक रविराज मास्टर ने अपनी क्लास के सामने रखा, और जिस तरह से उनके विद्यार्थियों ने जवाब दिया, उससे अब इंटरनेट पर ज्योमेट्री से कहीं ज़्यादा बड़ी चीज़ के बारे में बात हो रही है।

एक-एक करके, स्टूडेंट्स आगे आए और अपनी किस्मत आजमाई। जैसी कि उम्मीद थी, तीन सीधी लाइनें कभी भी पूरी तरह से एक परफेक्ट स्क्वेयर नहीं बन पाईं ˉ हमेशा कुछ न कुछ कमी सी लगती थी। एक स्टूडेंट ने, क्रिएटिव सोच दिखाते हुए, तीन सॉलिड साइड बनाईं और चौथी साइड को डॉटेड लाइन से पूरा किया, उम्मीद थी कि वह गिना जाएगा। यह चालाकी थी, लेकिन फिर भी जवाब नहीं था। आखिर में, एक स्टूडेंट ने इसे हल कर लिया उसने एक पूरा चार साइड वाला स्क्वेयर बनाया, और फिर बस उसके अंदर तीन लाइनें जोड़ दीं। स्क्वेयर, तीन लाइनों के साथ। प्रॉब्लम सॉल्व हो गई।

बाद में सोचने पर इसका हल साफ़ लगता है, फिर भी पहली कोशिश में लगभग कोई इसे नहीं समझ पाता। ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारा दिमाग एक वाक्य का एक मतलब पकड़ लेता है और उसी के साथ चलता है, शायद ही कभी यह देखने के लिए रुकता है कि कोई और मतलब मौजूद है या नहीं। पूरी पहेली एक ही शब्द पर टिकी है ˉ विद। ज़्यादातर स्टूडेंट्स ने तीन लाइनों वाला एक स्क्वेयर बनाएं सुना और मान लिया कि इसका मतलब तीन लाइनों का इस्तेमाल करना है। लेकिन विद का मतलब भी उतनी ही आसानी से के साथ हो सकता है ˉ इस मामले में, एक स्क्वेयर जिसके अंदर तीन लाइनें खींची गई हों।

यह एक शब्द का बदलाव पूरी तरह से बदल देता है कि क्या पूछा जा रहा है। यह एक अच्छी छोटी सी याद दिलाने वाली बात है कि किसी प्रॉब्लम को हल करने में जल्दबाज़ी करने से पहले, यह दोबारा जांचना मददगार

होता है कि सवाल असल में क्या पूछ रहा है।

लॉजिक में, इस तरह के वर्डप्ले का एक नाम है: बराबरी का भ्रम, जिसे एम्बिगुइटी का भ्रम भी कहा जाता है। ऐसा तब होता है जब किसी शब्द के एक से ज़्यादा सही मतलब होते हैं, जिससे कोई बात मतलब के लिए खुली रह जाती है - कभी मासूमियत से, कभी बहुत जानबूझकर।

यह सिर्फ़ दिमाग घुमाने के लिए पार्टी ट्रिक नहीं है। एडवरटाइज़र और पॉलिटिशियन जवाबदेही से बचने के लिए हमेशा एम्बिगुइटी का सहारा लेते हैं ताकि वे अपनी बात पर अड़े रहें। दर्शनशास्त्री जस्टिन डी'एम्ब्रोसियो ने इस टैक्टिक को एक तरह का मैनिपुलेटिव अंडर-स्पेसिफिकेशन बताया है - जिसमें अस्पष्ट शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है ताकि अगर कोई एतराज़ करे, तो बोलने वाला बस यह दावा कर सके कि उसका मतलब कुछ और था। जस्टिस, फेयरनेस, और डेमोक्रेसी जैसे ज़रूरी कॉन्सेप्ट भी बदनाम रूप से अंडरस्पेसिफाइड होते हैं, यही वजह है कि वे अक्सर नारों और साउंडबाइट्स में बिना ठीक से परिभाषित किए ही दिखाई देते हैं।

मीडिया और प्रोपेगैंडा पर स्टडी करने वाले रिसर्चर इस तरह की जानबूझकर साफ़ न बताने को अपने आप में एक जानी-मानी टेक्निक मानते हैं - जिसे अक्सर ऑबफस्केशन कहा जाता है, जहाँ किसी मुद्दे को उलझाने और लोगों को उसे बहुत करीब से देखने से रोकने के लिए भ्रमित करने वाली या किसी खास भाषा का इस्तेमाल किया जाता है।

क्लासरूम में हुए इस प्रयोग से बड़ी सीख यह मिलती है कि, उन शब्दों पर ध्यान दें जिनका एक से ज़्यादा मतलब हो सकता है, और यह पूछने से न डरें कि असल में उनका क्या आशय है।

मजे की बात है कि यह आदत सिर्फ मैनिपुलेशन को पहचानने के लिए ही काम की नहीं है - यह असली गलतफहमियों को भी कम कर सकती है। कई असहमति, चाहे घर पर हो या सार्वजनिक बहस में, असल में तथ्यों पर असहमति नहीं होतीं। वे दो लोगों के एक ही शब्द का दो अलग-अलग मतलब निकालने के लिए चुपचाप इस्तेमाल करने की वजह से होती हैं। किसी विमर्श में जाने से पहले शब्दों को परिभाषित करने के लिए रुकना एक-दूसरे से बहुत सारी बातें टालने से बचा सकता है।

एक ऐसे पाठ के लिए बुरा नहीं है जो ब्लैकबोर्ड पर एक स्क्वेयर और तीन लाइनों से शुरू हुआ हो।

इस कहानी को सच में मज़ेदार बनाने वाली बात किसी एक जवाब की चालाकी नहीं है, बल्कि एक ही कमरे में अलग-अलग तरह के तरीके हैं। कोई भी दो बच्चे इसे एक ही तरह से हल नहीं कर पाए, और यही बात शिक्षा विशेषज्ञ सालों से समझाने की कोशिश कर रहे हैं - जब बच्चों को एक ही सही तरीके में नहीं बांधा जाता, तो वे अपने आप इधर-उधर सोचने लगते हैं।

यह उस तरह की ओपन-एंडेड प्रॉब्लम-सॉल्विंग है जिसे औपचारिक आकलन में शायद ही कभी मान्यता मिलती है, फिर भी यह ठीक वही कौशल है जो कक्षा के बाहर सबसे ज़्यादा मायने रखता है। असल दुनिया की समस्या शायद ही कभी पाठ्यपुस्तक में लिखी गई समीकरण जितनी साफ़-सुथरी होता है; वह अक्सर इसी तरह की रिसोर्सफुल, बाउंड्री-बेंडिंग सोच की मांग करती हैं। शिक्षक और ऑनलाइन पेरेंटिंग कम्युनिटी ने तुरंत बताया है कि ऐसी गतिविधि बच्चे के आत्मबल को पूरे टर्म में रटने से ज़्यादा बढ़ाती हैं। जब किसी स्टूडेंट को बताया जाता है कि किसी चीज़ को सॉल्व करने का कोई एक सही तरीका नहीं है, तो वे गलत जवाबों से डरना बंद कर देते हैं - और प्रयोग करना शुरू कर देते हैं।

यह बड़ों के लिए भी एक हल्की सी याद दिलाने वाली बात है। बड़े होने और रूटीन में ढलने के बीच, कई बड़े लोग किसी समस्या के नियमों को तोड़ने की अपनी आदत खो देते हैं। बजाय इसके वे उन पर टिके रहते हैं। बच्चों से भरे कमरे में कागज़ को लापरवाही से मोड़ते, टेबल के किनारों का इस्तेमाल करते, या पास की चीज़ों का इस्तेमाल करके चीटिंग करके कोई स्मार्ट सॉल्यूशन निकालते देखना, सच कहूँ तो, कल्पना की एक छोटी सी मास्टरक्लास है।

एक ऐसे स्कूलिंग सिस्टम में जिसकी अक्सर मतलब से ज़्यादा अंकों को प्राथमिकता देने के लिए आलोचना की जाती है, यह तीन लाइन वाला स्क्वायर एक्सपेरिमेंट इस बात का एक रिफ्रेशिंग उदाहरण है कि जब क्यूरियोसिटी को आगे बढ़ने दिया जाए तो सीखना कैसा दिख सकता है। कभी-कभी, सबसे अच्छे सबक सिलेबस में बिल्कुल नहीं मिलते वे एक ऐसे शिक्षक में मिलते हैं जो इतना साहसी होता है कि एक गलत सवाल पूछता है और देखता है कि क्लास उसे कहाँ ले जाती है।❑

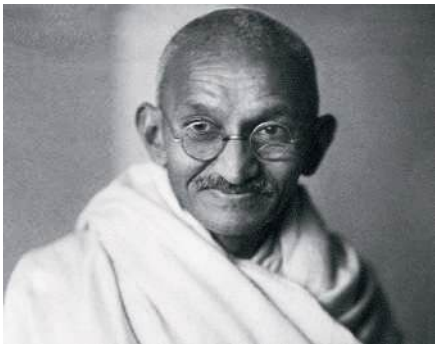

गांधी के हस्तलिखित संदेशों का संग्रह 16.20 करोड़ में बिका

❑

महात्मा गांधी के हस्ताक्षरों वाले हाथ से लिखे विचारों का एक दुर्लभ संग्रह, जिसे 'ए थॉट फॉर द डे' के नाम से इकट्ठा किया गया था, ने एक नया विश्व रिकॉर्ड बनाया है। यह हाल ही में हुए सैफरनआर्ट नीलामी में 16.20 करोड़ रुपये में बिका। ऑक्शन में बेचे गए किसी भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज नीलामी में यह विश्व कीर्तिमान है।

महात्मा गांधी के हस्तलिखित संदेशों और पत्रों का ऐतिहासिक महत्व है। आनंद टी. हिंगोरानी के संग्रह से प्राप्त महात्मा गांधी के पत्रों और संदेशों की नीलामी ने वैश्विक स्तर पर इतिहासकारों, संग्रहकर्ताओं और आम जनता का ध्यान अपनी ओर खींचा है।

हिंगोरानी साल 1930 में सिंध के एक 24 साल के नौजवान थे जो महात्मा गांधी से प्रभावित होकर, ब्रिटिश नमक टैक्स के विरोध में हुए दांडी मार्च में शामिल हुए थे। वे बाद में अहमदाबाद के साबरमती आश्रम में गांधी के साथ जुड़ गए। उन्होंने कुछ समय के लिए वीकली हरिजन का सम्पादन भी किया, और गांधी की लिखी हुई चीज़ों को इकट्ठा करने और उनकी लिस्ट बनाने का काम अपने ऊपर ले लिया, जिसमें उन्हें भेजी गई बहुत सारी चिट्ठियां भी शामिल थीं। संभालकर रखने की हिंगोरानी की इस आदत ने गांधी के सबसे ज़रूरी निजी पुरालेख संग्रहों में से एक को आकार दिया।

इस संग्रह के महत्व को समझने के लिए आनंद हिंगोरानी और महात्मा गांधी के बीच के प्रगाढ़ संबंधों को समझना जरूरी है। आनंद हिंगोरानी एक प्रखर पत्रकार, लेखक और स्वतंत्रता सेनानी थे। वे गांधी जी के विचारों से इस कदर प्रभावित थे कि उन्होंने अपना पूरा जीवन बापू के संदेशों के संकलन और प्रसार में समर्पित कर दिया।

हिंगोरानी ने गांधी के लेखों और विचारों को कई खंडों में संपादित किया। इनमें सबसे प्रसिद्ध संकलन 'गॉड इज ट्रुथ' है, जिसे गांधी जी ने स्वयं सराहा था। हिंगोरानी गांधी के केवल एक अनुयायी नहीं थे, बल्कि बापू उन्हें अपने परिवार के सदस्य की तरह मानते थे। हिंगोरानी की पत्नी के निधन के बाद, गांधी जी ने उन्हें मानसिक संबल देने के लिए नियमित रूप से पत्र लिखे थे।

इस नीलामी ने विवाद और नैतिक प्रश्न भी खड़े किए हैं कि क्या ऐसी धरोहरों की नीलामी होनी चाहिए? हर बार जब महात्मा गांधी या भारत के राष्ट्रीय नायकों की व्यक्तिगत वस्तुओं की नीलामी होती है, तो समाज और सरकार के भीतर एक वैचारिक बहस छिड़ जाती है। हिंगोरानी संग्रह की नीलामी भी इस बहस से अछूती नहीं रही।

बहस में महत्वपूर्ण बात राष्ट्रीय संपत्ति बनाम निजी स्वामित्व की है। कहा जा रहा है कि महात्मा गांधी पूरे राष्ट्र के हैं, इसलिए उनके द्वारा लिखा गया एक-एक शब्द देश की सामूहिक संपत्ति होना चाहिए। इसे किसी निजी संग्रहकर्ता के बंद कमरे की शोभा नहीं बनना चाहिए। सरकार की भूमिका पर भी सवाल उठते हैण। अक्सर यह मांग उठती है कि भारत सरकार को आगे आकर ऐसी नीलामियों को रोकना चाहिए या स्वयं बोली लगाकर इन सामग्रियों को खरीदकर राष्ट्रीय संग्रहालय या 'राष्ट्रीय अभिलेखागार' में रखना चाहिए। ❑

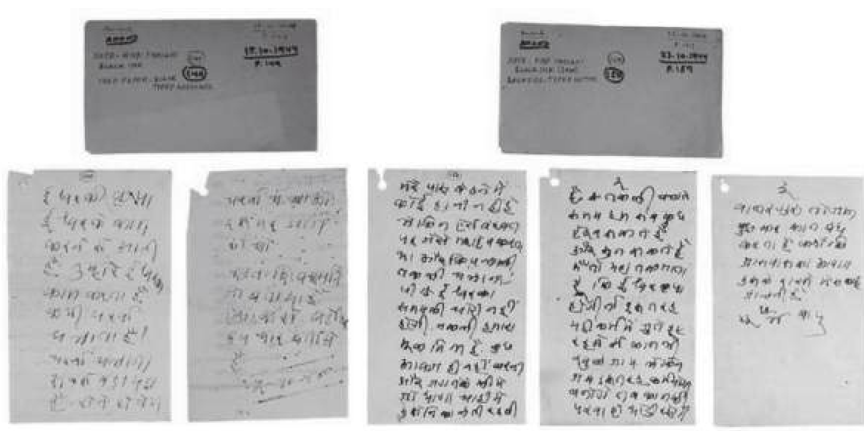

साहित्य में लालित्य पर गोष्ठी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में 8 व 9 अगस्त को साहित्य पर दो दिन की राष्ट्रीय संगोष्ठी का सरस आयोजन हुआ। गोष्ठी में दिल्ली, मध्य प्रदेश और गुजरात के अलावा राजस्थान के विभिन हिस्सों से साहित्यकार शामिल हुए जिनमें जाने-माने कवि और कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल भी थे।

कार्यक्रम की औपचारिक शुरुआत 'साधो! सबद साधन कीजे' कार्यक्रम से हुई जिसमें वक्ताओं का कहना था कि शब्द साधन एक यज्ञ है तथा स्वाध्याय ही सबसे बड़ा तप है।

इस मौके पर सेना में लेफ्टिनेंट जनरल पद से सेवानिवृत्त दलीप सिंह राठौड़ की पुस्तक 'प्रतिरोध', उषा राजश्री की पुस्तक 'सोनचिड़ी' और डॉ इन्दु झुंझुनूंवाला की पुस्तक 'भला शब्दों में क्या रखा है' का विमोचन हुआ।

अन्य सत्रों में देश के अनेक भागों से आए कवियों व कवित्रियों ने जाने-माने शायर लोकेश कुमार सिंह 'साहिल' के सानिध्य में छंद-मुक्त कविताओं का पाठ तथा नाट्य मंचन किया।

दूसरे दिन 'भाषा में लालित्य तत्त्व' विषय पर अन्य विद्वानों के साथ प्रसिद्ध कवि और कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल का भी उद्‌बोधन हुआ। सत्र में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के साहित्य पर डॉ राजेश कुमार व्यास, डॉ शोभा सिंह और डॉ अमर नाथ 'अमर' के गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुए।

समिति ने दो दिनों का यह आयोजन ग्रासरूट फाउंडेशन, राजस्थान फोरम, तथा अभ्युदय अंतरराष्ट्रीय संस्थान के साथ मिलकर किया। ❑

भारत के वैज्ञानिक समुदाय में इतिहास रचा गया

वर्षा अशोक अगलावे जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया की पहली महिला महानिदेशक बनी हैं। यह उस संस्थान के लिए एक ऐतिहासिक पल है जिसने 1851 से भारत की भू-वैज्ञानिक यात्रा को आकार दिया है; इसके साथ ही, वे जीएसआई के 176 साल के इतिहास में इसकी अगुवाई करने वाली पहली महिला बन गई हैं। उन्होंने 31 जुलाई, 2026 को संगठन की 54वीं महानिदेशक के तौर पर कार्यभार संभाला।

कलकत्ता यूनिवर्सिटी से भू-विज्ञान में गोल्ड मेडलिस्ट रहीं अगलावे 1992 में एक भू-वैज्ञानिक के तौर पर जीएसआई से जुड़ीं। उन्होंने पूर्वी क्षेत्र की अतिरिक्त महानिदेशक बनने से पहले संगठन के केंद्रीय, उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों में काम किया।

वर्षा अशोक अगलावे

जीवाश्म विज्ञान और परागकण विज्ञान की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान वाली इस विशेषज्ञ ने भारत के प्रागैतिहासिक अतीत के अध्ययन में अहम योगदान दिया है।❑

RS-CIT

एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट

राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited

(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

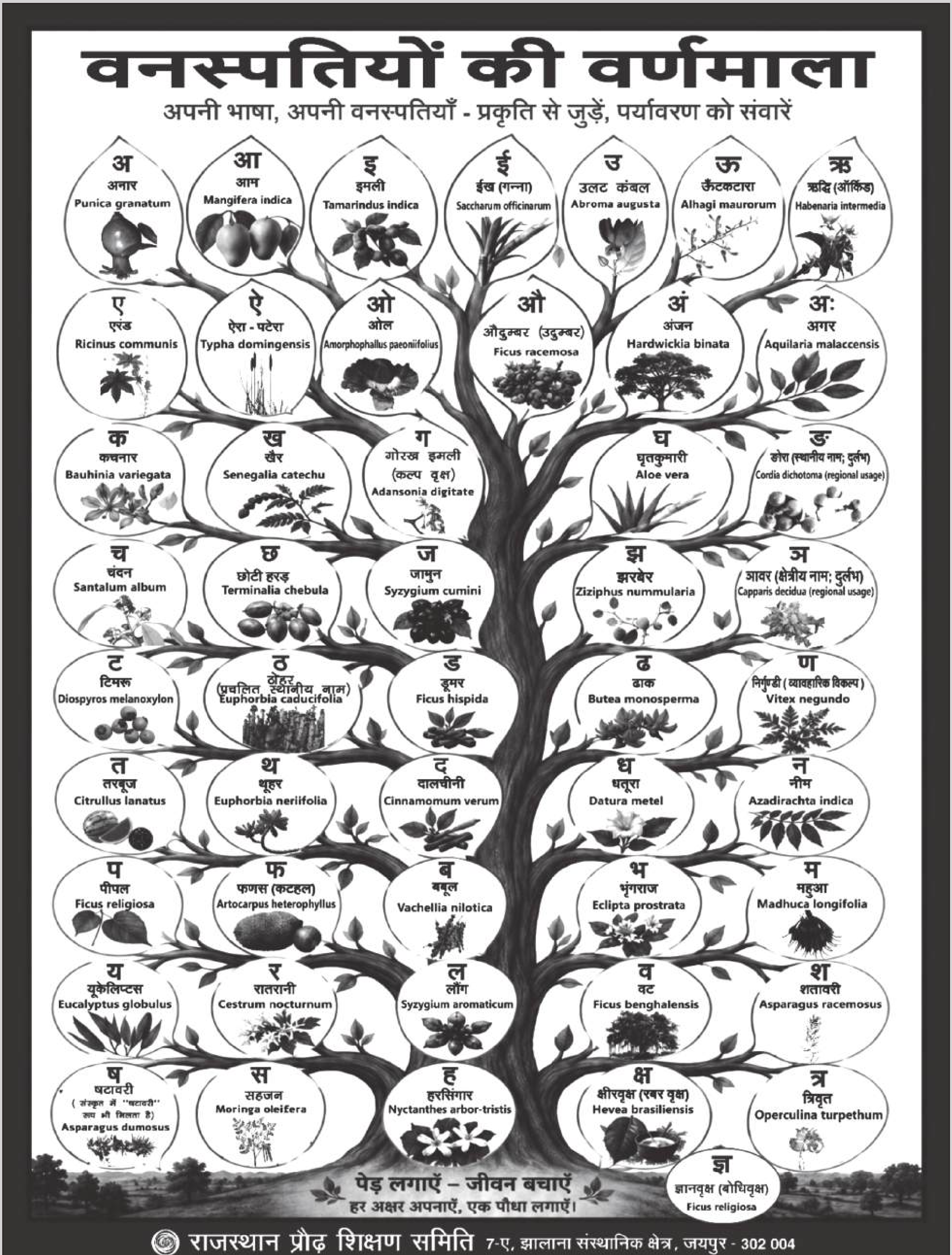

वनस्पतियों की वर्णमाला
अपनी भाषा, अपनी वनस्पतियाँ - प्रकृति से जुड़ें, पर्यावरण को संवारें
अ अनार Punica granatum
आ आम Mangifera indica
इ इमली Tamarindus indica
ई ईख (गन्ना) Saccharum officinarum
उ उलट कंबल Abroma augusta
ऊ ऊँटकटारा Alhagi maurorum
ऋ ऋद्धि (ऑर्किड) Habenaria intermedia
ए एरंड Ricinus communis
ऐ ऐरा - पटेरा Typha domingensis
ओ ओल Amorphophallus paeoniifolius
औ औदुम्बर (उदुम्बर) Ficus racemosa
अं अंजन Hardwickia binata
अः अगर Aquilaria malaccensis
क कचनार Bauhinia variegata
ख खैर Senegalia catechu
ग गोरख इमली (कल्प वृक्ष) Adansonia digitate
घ घृतकुमारी Aloe vera
ङ ङोरा (स्थानीय नाम; दुर्लभ) Cordia dichotoma (regional usage)
च चंदन Santalum album
छ छोटी हरड़ Terminalia chebula
ज जामुन Syzygium cumini
झ झरबेर Ziziphus nummularia
ञ ञावर (क्षेत्रीय नाम; दुर्लभ) Capparis decidua (regional usage)
ट टिमरू Diospyros melanoxylon
ठ ठोहर (प्रचलित स्थानीय नाम) Euphorbia caducifolia
ड डूमर Ficus hispida
ढ ढाक Butea monosperma
ण निर्गुण्डी (व्यावहारिक विकल्प) Vitex negundo
त तरबूज Citrullus lanatus
थ थूहर Euphorbia neriifolia
द दालचीनी Cinnamomum verum
ध धतूरा Datura metel
न नीम Azadirachta indica
प पीपल Ficus religiosa
फ फणस (कटहल) Artocarpus heterophyllus
ब बबूल Vachellia nilotica
भ भृंगराज Eclipta prostrata
म महुआ Madhuca longifolia
य यूकेलिप्टस Eucalyptus globulus
र रातरानी Cestrum nocturnum
ल लौंग Syzygium aromaticum
व वट Ficus benghalensis
श शतावरी Asparagus racemosus
ष षटावरी (संस्कृत में "षटावरी" रूप भी मिलता है) Asparagus dumosus
स सहजन Moringa oleifera
ह हरसिंगार Nyctanthes arbor-tristis
क्ष क्षीरवृक्ष (रबर वृक्ष) Hevea brasiliensis
त्र त्रिवृत Operculina turpethum
ज्ञ ज्ञानवृक्ष (बोधिवृक्ष) Ficus religiosa
पेड़ लगाएँ – जीवन बचाएँ
हर अक्षर अपनाएँ, एक पौधा लगाएँ।
राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति 7-ए, झालाना संस्थानिक क्षेत्र, जयपुर - 302 004